सुषमा-साहित्य माला

पचीसवाँ पुष्प

शरत्-साहित्य

शरत्-पत्रावली

अनुवादकर्त्ता
डॉ० महादेव साहा

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर (प्राइवेट) लिमिटेड, बम्बई–४

तीसरी बार मार्च १९६१
मूल्य : एक रुपया पचास नये पैसे

प्रकाशक : यशोधर मोदी, मैनेजिंग डायरेक्टर,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर (प्राइवेट) लिमिटेड, हीराबाग बम्बई–४
मुद्रक : ओमप्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी (बनारस) ५७७ –१७

बचपनके साथी
'घनश्याम'को
समर्पित

भूमिका

(प्रथम संस्करणसे)

साहित्यमें व्यक्तिगत पत्रोंका एक विशेष स्थान है। भारतीय पत्र-साहित्यमें बंगलाका पत्र-साहित्य आगे बढ़ा हुआ है। उन्नीसवीं और बीसवीं सदीके कितने ही साहित्यकारोंके पत्र-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। पत्र-साहित्यको संस्मरणका पूरक कहा जा सकता है।

पत्र-साहित्यके संकलनके रास्तेमें कितनी ही कठिनाइयाँ हैं। पत्र-लेखक अगर उनकी नकल अपने पास नहीं रख छोड़ता है या जिन्हें पत्र लिखा गया है वे उन्हें सँभालकर नहीं रखते हैं तो यह काम नहीं किया जा सकता। इन्हीं कारणोंसे कितने ही महान् साहित्यकारों तथा पुरुषोंके पत्रोंका संकलन बहुत-कुछ असम्भव-सा हो गया है।

जहाँतक शरत्चन्द्रके पत्रोंका प्रश्न है यह बड़े हर्षकी बात है कि जिन्हें उन्होंने पत्र लिखे उन्होंने उसे सँभालकर रखा और वे भिन्न-भिन्न अवसरोंपर पत्रिकाओंमें छपते भी रहे। पत्रिकाओं तथा शरत्चन्द्रके कतिपय मित्रोंकी सहायतासे बँगला साहित्यके अथक गवेषक श्री ब्रजेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्यायने उनके पत्रोंका संकलन कई वर्ष पहले शुरू किया था। उन्होंने अबतक एकाधिक पत्र-संकलन प्रकाशित भी कराए हैं।

शरत्चन्द्रके पत्रोंके संकलनके कामोंमें मैं उनके मित्रों तथा पत्रिकाओंकी सहायतासे कई वर्षोंसे लगा हुआ था। ब्रजेन्द्रनाथके संकलनोंने मेरा काम सहज बना दिया।

वर्तमान हिन्दी अनुवादके छप जानेके बाद मुझे कितने ही और पत्र मिले हैं जिन्हें अगले संस्करणमें देनेकी इच्छा है।

इन पत्रोंको पढ़नेसे पता चलेगा कि शरत्चन्द्र अपने व्यक्तिगत जीवनमें कितने महान् थे। उन्होंने कितने ही नए साहित्यकारोंको तैयार किया, पत्रिकाओंके लिए निःस्वार्थ भावसे अथक परिश्रम किया और जीवन-पथमें आनेवाली विभिन्न कठिनाइयोंका बड़े साहसके साथ सामना किया।

नए पुराने साहित्यकारोंके सीखनेके लायक इन पत्रोंमें बहुत-सी बातें मिलेंगी। आशा है पत्रावलीसे पूरा फायदा उठाया जा सकेगा।

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकरने शरत्-साहित्यका यथासाध्य प्रामाणिक अनुवाद प्रकाशितकर हिन्दीके अनुवाद-साहित्यको समृद्ध बनाया है। शरत्चन्द्रके कई असमाप्त उपन्यास, कई रचना, निबन्ध-संकलन अभीतक हिन्दीमें नहीं आए हैं। मैं उनके अनुवादमें लगा हुआ हूँ और शीघ्र ही उन्हें हिन्दी-जगत्के सामने उपस्थित करनेकी आशा रखता हूँ। इसके अलावा मुझे शरत्चन्द्रकी जीवनी और शरत्-साहित्यपर एक-एक पुस्तक लिखनेकी इच्छा है। आशा है अगले वर्षतक यह काम समाप्त हो जायगा।

महादेव साहा

स्वाधीनता कार्यालय,
कलकत्ता
जून, १९५२

प्रकाशकका निवेदन

पहले संस्करणके समाप्त हो जानेपर बहुत जल्दीमें यह दूसरा संस्करण निकालना पड़ा। और अब यह तीसरा निकल रहा है। अनुवादक महाशय बादमें मिले हुए पत्रोंका अनुवाद नहीं भेज सके। उन्हें पुराने पतेपर पत्र लिखा गया परन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। स्थानान्तरित हो जानेके कारण शायद उन्हें पत्र ही नहीं मिला। इस बीच 'शरत् निबन्धावली' और असमाप्त उपन्यास (जागरण आदि) प्रकाशित हो चुके हैं और शरत् बाबूकी एक अत्यन्त प्रामाणिक जीवनी श्री विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखी जा रही है।

पिछले संस्करणमें कुछ पत्र और पत्रांश कहींके कहीं और दुबारा छप गये थे, उन्हें यथास्थान ठीक कर दिया गया है।

११-१-५६

पत्र-सूची

परिचय

[भिन्न-भिन्न लेखकों और मित्रोंको पत्र लिखे गये, उनका]

१ उपेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय—शरत्चन्द्रके रिश्तेके मामा। बंगालके प्रसिद्ध उपन्यासकार। 'विचित्रा' नामक मासिक पत्रिकाके सम्पादक। शशिनाथ, राजपथ, अमूल-तरु असाधारण दिक्शूल आदि उपन्यास तथा, गिरिका आदि कहानी-संग्रह तथा 'आत्मकथा' इनकी मुख्य रचनाएँ हैं।

२ प्रमथनाथ भट्टाचार्य—शरत्चन्द्रके मित्र और साहित्यरसिक।

३ फणीन्द्रनाथ पाल—'यमुना' पत्रिकाके सम्पादक। इसी पत्रिकामें पहले-पहल शरत्चन्द्रकी रचनाएँ प्रकाशित हुईं और वे साहित्य जगत्में प्रसिद्ध हुए।

४ हेमेन्द्रकुमार राय—छायाधारी उपन्यास और कहानियोंके अलावा इन्होंने कितनी ही रोमांचकारी जासूसी कहानियाँ भी लिखी हैं। पद्म, मधुपर्क सिन्दूरचुपड़ी, माला-चन्दन आदि इनके कहानी-संकलन हैं। आलेयार आलो, अबेर आल्पना, काल-वैशाखी पायेर धुलो आदि बड़ी कहानियाँ और उपन्यास हैं। 'यौवनेर गान' नामक इनका कविता-संग्रह भी उल्लेखनीय है।

५ हरिदास चट्टोपाध्याय—शरत्चन्द्र चट्टोपाध्यायके मुख्य प्रकाशक गुरुदास चट्टोपाध्याय एण्ड सन्सके मालिक।

६ मणिलाल गंगोपाध्याय—'भारती पत्रिकाके सम्पादक। विदेशी कहानियोंके अनुवादमें दक्ष। कल्पकथा, आलकस्ना, झाँप, मधुवा पापड़ी और मुक्तापि आदि कहानीसंग्रह प्रसिद्ध हैं। मुक्तार मुक्ति' नामसे एक नाटक भी इन्होंने लिखा था।

७ सुधीरचन्द्र सरकार—शरत्चन्द्रके पारिवारिक मित्र। शिशु-साहित्यिक। 'मौचाक' (मधुचक्र) नामक शिशु-पत्रिकाके सम्पादक।

८ मुरलीधर वसु—शिशु-साहित्यिक और शरत्चन्द्रके मित्र।

९ प्रमथनाथ चौधरी—बंगालके सुप्रसिद्ध कवि कहानी, उपन्यास और निबन्धकार। 'सबुज पत्र'के सम्पादक। वीरबलेर हालखाता, नाना कथा,

बीरबलेर टिप्पनी, नाना चर्चा, घरे बाहिरे, आदि इनके निबन्ध-संग्रह हैं। नील लोहितेर आदि प्रेम चारबारी कथा आदि उनके कितने ही कहानी-संग्रह हैं। दर्शन, संगीत, किसानोंकी समस्या, इतिहास आदि पर भी इन्होंने कितनी ही पुस्तकें लिखी हैं। इनकी अनेक रचनाएँ आम तौरपर बीरबलके नामसे छपा करती थीं। आप रवीन्द्रनाथके बहनोई थे।

१० लीलारानी गंगोपाध्याय—शरत्चन्द्रकी साहित्यिक शिष्या और कहानी-लेखिका।

११ हरिदास शास्त्री—शरत्चन्द्रके मित्र।

१२ मलयचन्द्र सरकार—साहित्यरसिक और शरत्चन्द्रके अनुगत मानव।

१३ दिलीपकुमार राय—सुप्रसिद्ध नाट्यकार द्विजेन्द्रलाल रायके पुत्र। उपन्यासकार, निबन्धकार संगीतज्ञ और अरविन्द भक्त। मनेर परश रंगेर *परश बहुबल्लभ दुधारा दोला आदि इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं।* तीर्थंकर आदि कितने ही निबन्धसंग्रह छप चुके हैं। भ्रमण संगीत आदिपर भी इन्होंने काफी लिखा है। शरत्चन्द्रकी 'निष्कृति'का इन्होंने अँग्रेजी अनुवाद किया है।

१४ भूपेन्द्रकिशोर रक्षितराय—क्रान्तिकारी कार्यकर्ता और शरत्चन्द्रके मित्र। 'वेणु' नामक पत्रिकाके सम्पादक।

१५ कृष्णेन्दुनारायण भौमिक—'मोटरेय' नामक हास्यरसकी पत्रिकाके सम्पादक और शरत्चन्द्रके भक्त।

१६ अतुलानन्द राय—शरत्चन्द्रके भक्त और साहित्यरसिक।

१७ अविनाशचन्द्र घोषाल—शरत्चन्द्रके मित्र। 'वातायन' पत्रिकाके सम्पादक।

१८ मतिलाल राय—अरविन्द घोषके भक्त और सहकर्मी। प्रवर्तक संघ (चन्दननगर, बंगाल) तथा कितने ही उद्योग-धन्धे, बैंक बीमाकम्पनी संचालक। प्रवर्तक नामक मासिक पत्रिकाके सम्पादक और दार्शनिक लेखक।

१९ पशुपति चट्टोपाध्याय—नाट्यकार, पत्रकार और शरत्चन्द्रके भक्त।

२० जहानारा चौधरी—'वर्षवाणी' और 'बेगम'की सम्पादिका।

२१ काजी अब्दुल वदूद—कोषकार, निबंधकार, उपन्यासकार और जीवनीकार। मीरपरिवार, हिन्दू-मुसलमान गेटे, श्रीएटिंब-बंगाल आदि इनकी रचनाएं हैं।

२२ रमाप्रसाद मुखोपाध्याय—स्वर्गीय आशुतोष मुखोपाध्यायके पुत्र, साहित्य-रसिक और 'बंगवाणी'के सम्पादक। इसी पत्रिकामें पहले पहल धारावाहिक रूपमें पथेर दाबी (पथके दावेदार) नामक शरत्‌चन्द्रका उपन्यास प्रकाशित हुआ था।

२३ रवीन्द्रनाथ ठाकुर—परिचय अनावश्यक।

२४ केदारनाथ वन्द्योपाध्याय—सुप्रसिद्ध उपन्यासकार और कहानीकार। बंगला-साहित्यमें 'दादा मोशाय'के नामसे प्रसिद्ध। इन्होंने कोष्ठी लोका, अमराकि ओर्डे, कबुकति पाथेय तुक्लेर विवाली इत्यादि दर्जनों उपन्यास और कहानियाँ लिखी हैं। चीनर यात्रीमें इन्होंने बक्सर-विद्रोहके समयकी अपनी चीन-यात्राका विवरण दिया है।

२५ यादवचन्द्र वन्द्योपाध्याय—मौलिक और विदेशी छाया लेकर कई दर्जन उपन्यासोंके लेखक। यमुना पुलिने भिखारिनि, दोटाना, चोर, काँटा, डेरफेर, हाईसेन, आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएं हैं। 'रवि-रश्मि' नामसे इन्होंने रवीन्द्रनाथपर एक पुस्तक लिखी है।

२६ महेन्द्रनाथ करण—बंगालकी तथाकथित अछूत 'पोद' जातिके कार्यकर्ता। 'पौण्ड् क्षत्रियकुल-परिचय' पुस्तकके लेखक और शरत्‌चन्द्रके भक्त।

२७ अमल होम—प्रसिद्ध पत्रकार, साहित्यरसिक और शरत्‌चन्द्रके अनन्य भक्त।

२८ सुरेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय—साहित्यरसिक और शरत्‌चन्द्रके रिश्तेमें मामा।

२९ मणीन्द्रनाथ राय—साहित्यरसिक और शरत्‌चन्द्रके मित्रके पुत्र।

३०—बुद्धदेव—साहित्यरसिक और शरत्‌चन्द्रके भक्त। वनस्पतिशास्त्रके अध्यापक।

शरत्-पत्रावली

१

[श्री उपेन्द्रनाथ गंगोपाध्यायको लिखित]

डी ए जी का दफ्तर,
रंगून १०-१-१९११

प्रिय उपीन

तुम्हारा पत्र पाकर दुश्चिन्ता दूर हुई। दो दिन पहिले फणीन्द्रकी चिट्ठी और 'चरित्रहीन' मिले। तुम लोगोंपर अधिक दिनोंतक क्रोध करना सम्भव नहीं, इसलिए अब क्रोध नहीं है। लेकिन कुछ दिन पहले सचमुच ही बहुत क्रोध और दुःख हुआ था। मैं केवल अनवरत सोचता था कि यह करते क्या हैं। एक भी चिट्ठी जब नहीं देते तो जरूर ही इनकी मति-गति बदल गई है। तुमसे एक बात कह दूँ उपेन मुझमें एक बड़ी बुरी आदत है कि क्रोधमें हो सोच बैठता हूँ कि लोग जो कुछ करते हैं जान-बूझकर ही करते हैं। इच्छा न होते हुए भी कोई कोई आदतके कारण किसी दूसरे तरहका बरताव करते हैं। सेन्सिटिव (संवेदन) नामक एक बात है। मुझमें यह अत्यधिक मात्रामें है। सुरेन्द्रको आज दो हफ्ते हुए एक चिट्ठी लिखी थी। आजतक उसका जवाब नहीं मिला। ये लोग क्यों तो लिखते हैं और क्यों लिखना बन्द करते हैं। तुमने समाजपतिको 'काशीनाथ' देकर अच्छा काम नहीं किया। वह 'बोझा का कारोबार' है। बचपनमें अभ्यासके लिए लिखी गई कहानी है। इसको छपाना तो दूर रहा औरोंको दिखाना भी उचित नहीं है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि यह न छपे और मेरे नामको मिट्टीमें न मिलाया जाए। अबकी 'बोझ' ही भारी हो गया है।

मैं 'यमुना'के प्रति स्नेहहीन नहीं हूँ। यथासाध्य सहायता करूँगा। पर छोटी कहानियाँ लिखनेकी अब इच्छा नहीं होती, तुम लोग ही लिखो। निबन्ध लिखूँगा और भेजूँगा। 'चरित्रहीन' कब पूरा होगा यह नहीं कह सकता। आधा ही हुआ है। पूरा होनेपर समालोचकको ही भेज दूँगा यह कहना ठीक नहीं होगा। तुम अगर कलकत्तेमें होते तो तुम्हारे पास भेजता। इसी बीच तुम समालोचकको लिख देना कि 'काशीनाथ'को न छापे। अगर छाप देगा तो लज्जासे गड़ जाऊँगा। तुमने दो-एक कहानियाँ लिखनेको कहा है और भेजनेको लिखा है। अगर लिख सका तो लिखे दूँगा तुम्हें या फणीको।

इस बातको गुप्त रूपसे तुम्हींको लिख रहा हूँ। गिरीन जब छोटा था तभी मैं परिवारसे बाहर चला आया था, इतने वर्षोंके बाद शायद उसे मेरी याद भी न हो। उपीन तुम्हें एक बात और कहूँ। एक दिन उसकी एक पुस्तक खरीदनी चाही थी। तुमने मना करते हुए कहा था कि सुननेपर उसे दुःख होगा। उसी बातको याद रख कर ही मैंने नहीं खरीदी। साफ-साफ एक पुस्तक माँगी भी थी लेकिन उसने नहीं भेजी। बचपनमें उसकी अनेक चेष्टाओंका संशोधन कर दिया करता था। मैं लिखता था इसलिए उन लोगोंने भी लिखना शुरू किया। उस मकानमें शायद मैंने ही पहले उधर ध्यान दिया। इसके बाद वे लोग लड़कोंसे मिलकर एक हस्तलिखित मासिकपत्रिका निकालते थे। आजतक उसने एक भी प्रति मुझे पढ़नेको नहीं दी। शायद वह सोचता है कि मेरे ऐसा मूर्ख आदमी उसकी चीजोंको नहीं समझ सकता। जाने दो, उसके लिए दुःख करना बेकार है। संसारकी गति ही शायद यही है। मेरा स्वास्थ्य आजकल अच्छा है। लेकिन मन्दी हो गई है। आज-कल पढ़ना एक तरहसे बन्द किया है। मेरा असमाप्त 'महाश्वेता' (तैलचित्र) फिर समाप्त होनेकी ओर धीरे-धीरे बढ़ रहा है। इस बार अभ्यासको तुम्हारे लिखनेका इरादा है न? अगर नहीं है तो बहुत बुरा है। वकालत भी करो और इसे भी न छोड़ो।

मेरा कलकत्ता आना—इस देशको छोड़कर शायद सम्भव न होगा। समझ रहा हूँ कि स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहेगा लेकिन ठीक न रहना ही अच्छा है, पर वहाँ आना ठीक नहीं। ऐसा ही लग रहा है। मेरी फाउण्टेनपेन तुम्हारे हाथोंमें मजेमें हो। उस कलमसे बहुत-सी चीजें लिखी हैं। काम देनेपर और भी लिखेगी।

आज पर्यन्त । अगर 'चन्द्रनाथ' भेजना सम्भव हो और सुरेन्द्र राजी हो तो कार्तिक तक संशोधन करके फणीको भेजूँगा । चिट्ठीका जवाब देना ।

—शरत्

---

१४ लोअर पोजनडंग डाउन स्ट्रीट
रंगून २६।४।१३

श्रीचरणेषु । तुम्हारी चिट्ठी पाकर जितना अचरज हुआ उससे सौगुना व्यथित हुआ । मुझसे डाह करोगे इस बातको अगर मैं सच कहूँ तो क्या तुम विश्वास करोगे ? कलकत्तेकी स्मृति आज भी मेरे मनमें जीती-जागती है । मैं बहुत-सी बातें भूलता हूँ सही । लेकिन इन बातोंको इतनी जल्दी कदापि नहीं । शायद कभी नहीं भूलता । जो कुछ हो इसकी जिम्मेदारी मैं नहीं लूँगा । मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि यदि निरालेमें तुम एक बार मेरे मुँह और मेरी बातोंको याद कर देखो तो समझ सकोगे कि तुम मुझसे डाह करोगे, यह बात मेरे मुँहसे नहीं निकल सकती । मैं तो स्वप्नमें इस बातकी कल्पना ही नहीं कर सकता । फिर भी कहता हूँ कि तुम्हारी जो इच्छा हो मेरे सम्बन्धमें सोच-समझ सकते हो । मैं तुम्हें अपना उतना ही मंगलाकांक्षी सुहृद् आत्मीय और रिश्तेमें मान्य व्यक्ति समझूँगा और यही हमेशा किया है । तुम्हारा आपसमें झगड़ा विवाद हो सकता है, इसलिए क्या मैं उसके बीच पड़ूँगा ? तुमने विश्वास किया है कि मैंने कहा है कि तुम मुझसे डाह करते हो । मेरे सम्बन्धमें तुमने ऐसी बातपर कैसे विश्वास किया और उसे मुझे लिखनेका साहस किया ? दुःखी होनेके कारण क्या मैं इतना अधम हूँ ? मैं मनसे शायद इस तरहकी बातकी कल्पना कर सकता हूँ यह आज पहली बार सुन रहा हूँ । मुझे तुमने गहरी चोट पहुँचाई है । अगर अधिक दिनोंतक जीवित न रहूँ तो यह तुम्हारे मनमें भी एक दुःखका कारण बना रहेगा कि तुमने व्यर्थ ही मुझे दुःख पहुँचाया । तुम्हारी चिट्ठी पानेके बादसे बार-बार सोचता रहा कि तुम मुझे न जाने कितना नीच समझते हो । शायद मेरे नीच और मूर्ख होनेके कारण ही तुम मेरे बारेमें (हाल ही कलकत्तेमें इतनी घनिष्ठता और इतनी बातचीत हो जानेके बाद भी) इस बातपर विश्वास कर सके हो । नहीं तो नहीं

करते। सोचते कि ऐसा हो ही नहीं सकता। मेरी सौगन्ध उपीन पत्र पाते ही लिखना कि तुम इस बातपर अब विश्वास नहीं करते। मैंने कुछ दिन पहले शायद सुरेनको लिखा था कि मुझसे विद्रूप करके ही मानों वे चीजें छप रही हैं। इसका कारण यह है कि मैंने भी समाजपतिको लिखा कि उसे अब न छापें, फिर भी मुझे कोई उत्तर न देकर उनकी छपाई चलती रही। जो कुछ भी हो अब भीतरकी बात भी मालूम हुई। तुमने भी यही बात समाजपतिको कही थी। उसके बारेमें अब और जानकर सारा मामला समझ सका। तुम मेरे कितने मंगलाकांक्षी हो यह भी अगर न समझता उपीन तो आज इस तरहकी कहानियाँ न लिख सकता। मैं मनुष्यके हृदयको समझता हूँ। तुम जिस प्रकार अपने अन्तर्यामीके सामने निडर हो बिना संकोचके कह सकते हो कि मैं शरत्‌को सचमुच ही प्यार करता हूँ मैं भी बिलकुल वैसे ही जानता हूँ और उसी तरह विश्वास करता हूँ।

जाने दो इस बातको। केवल एक 'चन्द्रनाथ'को लेकर ही इतना हंगामा। यद्यपि यह समझमें नहीं आ रहा है कि वह फणीपालके पत्रमें कैसे छपेगा।

तुम लोगोंने सारी बातें न समझकर चारों ओरसे न समझकर अचानक विज्ञापन देकर काफी बेवकूफीका काम किया है और उसका फल भोग रहे हो। दोष तुम लोगोंका ही है और दूसरे किसीका नहीं। फणीपालके लिए तुम कुछ पसोपेशमें पड़ हो इसे पत्र-पत्रपर देख रहा हूँ।

मैं और भी मुसीबतमें पड़ गया हूँ। एक ओर मेरी बिलकुल इच्छा नहीं है कि 'चन्द्रनाथ' जैसा है वैसा ही छपे। यद्यपि वह कुछ छप भी गया है और बाकी हिस्सा मुझे नहीं मिला है। सुरेन बहुत डरता है कि कहीं वह चीज खो न जाये। वे मेरी चीजोंको हृदयसे प्यार करते हैं। शायद इसीलिए उनकी इतनी उत्कंठा है।

एक बात और उपीन 'भारतवर्ष'के लिए प्रमथ बार-बार 'चरित्रहीन' माँग रहा था। अन्तमें इस तरहसे लिख रहा है कि क्या कहूँ। वह मेरा बहुत दिनोंका पुराना दोस्त है और दोस्त कहनेसे जिस बातका बोध होता है, वह सचमुच वही है। उसने गर्वके साथ सबसे कहा है कि मैं 'चरित्रहीन' दूँगा ही और इसी आशामें ज आदिके चार-पाँच उपन्यासोंको पसन्दमें आकर

चौपट चुका है। यही 'भारतवर्ष' का मुखिया है। अब द्विजू बाबू आदि (हरिदास गुरुदासके पुत्र) ने उसे घर दबाया है। इधर 'यमुना'में भी विज्ञापन छपा है कि उसी पत्रिकामें 'चरित्रहीन' छपेगा। सभापति भी बराबर रजिस्ट्री-चिट्ठियाँ लिख रहे हैं। किधर क्या करूँ, कुछ भी समझमें नहीं आ रहा है। अभी-अभी प्रमथनाथकी लम्बी रोने-धोनेकी चिट्ठी मिली। वह कहता है कि यह उसे नहीं मिला तो वह मुँह दिखाने लायक नहीं रहेगा। यहाँतक कि उसे पुराने इष्ट-मित्र स्वजन वगैरह छोड़ना पड़ेगा। क्या करूँ, जरा सोच कर जवाब देना। तुम्हारा जवाब चाहिये। क्योंकि एकमात्र तुम ही शुरूसे इसका इतिहास जानते हो।

बहुत अच्छा नहीं हूँ। सात-आठ दिनोंसे ज्वर आ रहा है। अगर जरूरी समझना तो सुरेनको यह पत्र दिखा देना। तुम आपसमें जितना चाहो लड़ो लेकिन मैं तुम लोगोंका किसी समय शिक्षक था, कमसे कम उसका सम्मान तो देना ही।

—सेवक शरत्

(फणी बाबू यह पत्र आप पढ़कर उपेनको भेज दें।)

नं० १४, पोजाडंग डाउन स्ट्रीट,
रंगून १०—५—१९१२

प्रिय उपेन्द्र, आज तुम्हारी भी चिट्ठी मिली और प्रमथकी भी। तुम मेरे बारेमें बिलकुल स्वस्थ हो गये हो इससे कितनी तृप्तिका अनुभव कर रहा हूँ, इसे लिखकर व्यक्त करनेकी चेष्टा पागलपन होगी। तुम्हें अब क्लेश नहीं हो रहा है या दुःख नहीं हो रहा है इसीसे समझ गया कि अत्यन्त स्पष्ट भावसे मेरे कर्त्तव्यका निर्धारण कर दिया है। मैंने अपनेको मूर्ख कहा था—क्या वह मिथ्या है? तुम लोगोंके सामने मैं अपनेको पण्डित समझूँगा क्या मैं इतना बड़ा अहमक हूँ? हो सकता है कि बनाकर कहानियाँ लिख सकता हूँ, पर इसमें पाण्डित्य कहाँ? बी. ए., एम. ए. बी. एल., इन डिग्रियोंको मैं अत्यन्त श्रद्धा करता हूँ यही लिखा था। प्रमथ लिखता है कि कहानियोंको उसकी साहित्य मजलिसमें अत्यन्त सम्मान मिला है। द्विजेन्द्रलाल रायने इतनी मर्यादा की है कि जिसका

हीं होता। दीदीका 'नारीका मूल्य' कहा जाता है कि 'अमूल्य' हुआ है।
द बाबूका कहना है कि ऐसी कहानी शायद रवि बाबूकी भी नहीं है और
ेसा निबन्ध बंगला भाषामें उन्होंने पहले कभी नहीं पढ़ा था। सत्य मिथ्या
गवान् जाने। फणीकी पत्रिका छोटी है सही पर वैसी अच्छी पत्रिका शायद
आज-कल एक भी नहीं निकलती है। ईश्वर करे, फणी इसी तरह परिश्रम करके
अपनी पत्रिकाका सम्पादन करे। दो दिन बाद हो या दस दिन बाद श्रीवृद्धि
अनिवार्य है। पर धैर्य रखनी चाहिये—परिश्रम करना चाहिये। और मेरी बात।
। उसे छोटे भाईकी ही तरह देखता हूँ। उसकी पत्रिकासे अगर कुछ बच जाता
तब दूसरी पत्रिका पायेगी। लेकिन आज कल इतने अनुरोध आ रहे हैं कि
रे दस हाथ होते तो भी काम पूरा कर सकता ऐसा नहीं लगता। 'चरित्रहीन'
सकी पत्रिकामें नहीं प्रकाशित होगा यह बात किसने कही है? प्रमथको
सुननेके लिए दिया है। लेकिन अगर वह कह बैठता कि यहीं प्रकाशित करेगा तो
। सकता है कि मुझे सम्मति देनी पड़ती लेकिन वह लोग ऐसी माँग नहीं
रते। शायद पाण्डुलिपि पढ़कर कुछ डर गये हैं। उन्होंने सावित्रीको नौकरानीके
रूपमें ही देखा है अगर अक्ल होती और कहानीके चरित्रका कहाँ किस तरहसे
प होता है किस कोयलेकी खानमें कितना अमूल्य हीरा निकल सकता है अगर
स बातको समझते तो इतनी आसानीसे उसे छोड़ना नहीं चाहते। अन्तमें हो
कता है कि एक दिन अफसोस करें कि हाथमें आनेपर भी कैसे रत्नका
न्होंने त्याग कर दिया है। मुझसे उसने पूछा है कि उपसंहार क्या होगा।
रे ऊपर जिसका भरोसा नहीं अवश्य ही वह उस तरहका पहला उपन्यास
इसी पत्रिकामें प्रकाशित करनेमें आगा पीछा करेगा यह कोई आश्चर्यकी बात
हीं। लेकिन स्वयं ही वे लोग कह रहे हैं कि चरित्रहीन'का अन्तिम अंश
अर्थात् तुम लोगोंने जितना पढ़ा है उसके बाद उतना और) रवि बाबूसे भी
हुत अच्छा हुआ है (शैली और चरित्र-विश्लेषणमें)। पर उन्हें डर है कि अन्तिम
शको मैं कहीं बिगाड़ न दूँ। उन्होंने इस बातको नहीं सोचा कि जो आदमी
ान बूझकर मैसकी एक नौकरानीको प्रारम्भमें ही खींच कर लोगोंके सामने
ाजिर करनेकी हिम्मत करता है वह अपनी क्षमताको समझ-बूझकर ही ऐसा
रता है। अगर इतना भी नहीं जानूँगा तो झूठ ही उतनी उछल कूद तुम

लोगोंकी गुरुआई करता रहा। और एक बात। प्रमथ कहता है कि 'भारतवर्ष'को मैं अपनी ही पत्रिका समझूँ और वैसा करता भी हूँ। मैंने प्रमथको वचन दिया है कि यथासाध्य करूँगा लेकिन साध्य कितना है यह नहीं कहा। और भी एक बात है—वे दाम देकर लेख खरीदेंगे—सब उन्हें कमी नहीं होगी। लेकिन दाम देनेसे ही सबके लेख नहीं मिलते हैं। मेरे बारेमें शायद अब उन्होंने इस बातको समझा है। बहरहाल 'परिणीता' मेरे हाथोंमें आते ही फणीको भेज दूँगा। अपने पास नहीं रखूँगा। पर प्रमथ फणीके हाथोंमें उसे नहीं देगा क्योंकि फणीके ऊपर वे कुछ नाराज हैं। ऐसा ही होता है। क्योंकि मासिक पत्रोंके सम्पादक एक-दूसरेको नहीं देख पाते। और कुछ नहीं। पर प्रमथ केवल मेरा बाल्य-बन्धु ही नहीं है वह मेरा परम बन्धु और बहुत ही सच्चा आदमी है। सचमुच ही सज्जन व्यक्ति है। मैं उसे बहुत प्यार करता हूँ। इसीलिए भय था कि उसकी ओर जबरदस्तीसे मैं पार नहीं पाऊँगा। इस विषयमें ठीक खबर बादमें दूँगा।

तुम लिखते हो कि तुम लोग 'यमुना'को बड़ी करोगे। तुम लोग कौन? तुम 'यमुना'के परम बन्धु हो और निःस्वार्थ बन्धुत्व करने जाकर तुम्हें लांछना भोग करनी पड़ी है इसे विशेष रूपसे जाननेके कारण ही तुम्हारे विषयमें जो कुछ सुना है उसमें रत्तीमात्र भी विश्वास नहीं किया। हो सकता है कि कुछ कूटनीतिक चाल चले हो—अच्छा ही किया है। जिसे प्यार करना उसको इस तरहसे ही सहायता करना। फणीको तुम ही प्यार करते हो। लेकिन इसके अलावा तुम लोग शब्दका अर्थ ठीक नहीं समझ सका। इस बार समझा कर लिखना।
'पथका निर्देश' और 'रामकी सुमति'के बारेमें मेरा मत है कि 'पथका निर्देश' ही अच्छा है पर यह कहानी जरा कठिन है। सभी अच्छी तरह नहीं समझ पायेंगे। मैंने भी अनेकोंसे अनेक प्रकारके मत सुने हैं। जो स्वयं कहानी लिखते हैं वे ठीक जानते हैं कि 'रामकी सुमति'को तो लिखा भी जा सकता है, पर 'पथका निर्देश' लिखनेमें कुछ अधिक परेशानी उठानी पड़ेगी। शायद सभी लिख भी नहीं सकेंगे। इस तरहकी गड़बड़ीकी परिस्थितिमें ठीक खोकर एक खिचड़ी पका जायेगा। हो सकता है धैर्यकी कमीके कारण समाप्त होनेके पहले ही बन्द कर दें। और अपनी आलोचना खुद शुरू करूँ। लेकिन कलकत्ता और इस देशके लोगोंकी रायमें दोनों ही कहानियाँ सुप्रसिद्ध लिस्टमें एक्सेलेण्ट हैं।

हिम् बाबूका कहना है कि कहानियाँ आवश्यक हैं। फणीकी पत्रिकामें प्रति मास इस तरहकी कोई चीज प्रकाशित हो, इसकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये। पर मैं अब बहुत छोटी कहानियाँ लिखनेकी इच्छा नहीं करता। कुछ बड़ी हो ही जाती हैं। तुम लोगोंकी तरह काफी छोटी मानो लिख ही नहीं पाता। इसके अलावा एक बात और यहाँ मुझे कहनी है। मैं तो 'चन्द्रनाथ'को बिलकुल नये साँचेमें ढालने की चेष्टामें हूँ। हाँ कहानी (प्लाट) ज्योंकी त्यों रहेगी। इसके बाद या तो 'परिणीता' और नहीं तो उससे भी कोई अच्छी चीज 'यमुना'में प्रकाशित होनी चाहिये। और निबन्ध। इसकी भी अत्यन्त आवश्यकता है। अच्छे निबन्ध विशेष रूपसे आवश्यक हैं। ऐसा नहीं होता है तो केवल कहानियोंसे पत्रिकाको यथार्थमें बड़े लोग बड़ी नहीं समझेंगे। मुझे अगर तुम छोटी कहानी लिखनेके परिश्रमसे छुटकारा दे सकते हो, तो मैं निबन्ध भी लिख सकता हूँ और शायद कहानीकी तरह सरस और सुपाठ्य शैलीमें। इस विषयमें अपनी राय लिखना। अगर कहानी लिखनेका काम तुम लोग चला ले सकते हो तो मैं केवल उपन्यास और निबन्धमें पड़ूँ। नहीं तो दिखता है कि उसमें भी परिश्रम करना पड़ेगा। मेरी तबीयत ठीक नहीं। उसमें नहीं लिख पाता और पढ़ाईमें भी नुकसान होता है। आलोचना निबन्ध उपन्यास, कहानी सब-कुछ लिखनेसे लोग सबकी चर्चा करके मजाक उड़ायेंगे और दूसरी पत्रिकाओंमें भी कुछ देना होगा।

'देवदास' और 'पाषाण' भेज देना। मैं फिरसे लिखनेकी चेष्टा कर देखूँगा। अच्छा फणी ! कापियाँ छप कर क्रमशः क्यों बरबाद कर रहा है? उसके ग्राहकोंकी संख्या क्या कुछ बढ़ी है? मैं ऐसा नहीं समझता पर इस बातका अधिक भरोसा है कि अगले साल उसकी पत्रिका और पत्रिकाओंकी पंक्तिमें खड़ी हो जायगी।

फणीको लगातार आशंका होती है कि मैं शायद उसे छोड़कर अन्यत्र लिखने लगूँगा। लेकिन इस आशंकाका कारण क्या है? वह मेरे बारेमें ऐसा है। इस बातपर वह क्यों विश्वास नहीं कर पाता है, नहीं जाने। मैं नहीं जानता।

[illegible]-मिलन' कहानी सचमुच ही अच्छी है। लेकिन और कुछ बड़ी

होनी चाहिये थी। और शेषको सचमुच ही शेष करना उचित था। ऐसी कहानीको तुमने इतनी जल्दबाजीमें क्यों खतम की नहीं जानता। एक बात याद रखना कहानी कमसे कम ११ १४ पन्नेकी होनी चाहिये और नतीजा बहुत स्पष्ट होना चाहिये।

सुरेनने मेरी चिट्ठीका जवाब क्यों नहीं दिया? उसे अपने हाथकी कलम दी है, क्योंकि उससे अच्छी चीज मेरे पास देनेके लिए नहीं है। वह उसका क्या सद्व्यवहार कर रहा है पूछ कर लिखना। मेरी कलमका असम्मान न होने पावे। और चार कलमें देना बाकी हैं। योगेश मजूमदार कहाँ है? पूँटू, बूड़ी और लीरीन इन लोगोंके लिए भी अपनी कलमें ठीक कर रखी हैं। किसी दिन भेज दूँगा।

गिरीन क्या बाँकीपुर गया? वह कहाँ है, यह नहीं मालूम होनेके कारण उसे जवाब नहीं दे सका। मेरे पास पैसे नहीं है, कभी यह बात याद नहीं आई। अच्छा, आज यहींतक।

हाँ, एक बात और। सुधाकृष्ण बागचीने एक लिखित बयान भेजा है। वह कहता है कि सारी बातें झूठ हैं। अच्छी बात है। मैं जानता हूँ कि कौन-सी बात झूठ है। आदमी जब अस्वीकार कर रहा है, तो यही खतम कर देना उचित है। इसपर वह बूढ़ा आदमी है। फणीन्द्र बाबू, आपका तार पाकर भी जवाब नहीं दिया। कारण जवाब देनेकी वस्तु मेरे हाथसे बाहर है। पर आशा करता हूँ कि जल्द ही हाथोंमें आयेगी।

अगली मेलसे आलोचना और 'नारीका मूल्य' भेजूँगा। उसके बादवाली डाकसे 'चन्द्रनाथ' और एक कोई चीज। 'चरित्रहीन' 'यमुना'में प्रकाशित हो, यही मेरी आन्तरिक इच्छा है। ईश्वरकी इच्छासे यही होगा। निश्चिन्त रहें। पर सुन रहा हूँ कि उसमें मेसकी नौकरानीके कारण रुचिको लेकर जरा चख-चख मचेगी। मचने दीजिये। लोग कितनी ही निन्दा क्यों न करें। जो लोग जितनी निन्दा करेंगे, वे उतना ही अधिक पढ़ेंगे। वह भला हो या बुरा, एक बार पढ़ना शुरू करनेपर पढ़ना ही होगा। जो समझते नहीं हैं या कलाका मर्म नहीं जानते वे शायद निन्दा करेंगे। पर निन्दा करनेपर भी काम बनेगा। किन्तु वह साइकोलॉजी और एनालिसिसके सम्बन्धमें बहुत अच्छा है, इसमें सन्देह नहीं।

और यह एक संपूर्ण वैज्ञानिक नैतिक उपन्यास (साइन्टिफिक एथिकल नॉवेल) है, इस वक्त इसका पता नहीं चल रहा है।

—शरत्

---

१४ पोजनडंग टाउन स्ट्रीट
रंगून २२ अगस्त १९११

प्रिय उपीन बहुत दिनोंके बाद तुम्हें चिट्ठी लिखने बैठा हूँ। तुमने भी बहुत दिनोंसे अपनी कोई खबर नहीं दी। मत लिखो, इसके लिए दुःख नहीं करता और उलहना भी नहीं देता। दो-तीन महीनोंके बाद सम्भवतः फिर साक्षात्कार होगा। तब ये सारी बातें होंगी।

इस महीनेकी 'यमुना' मिली, तुम्हारी 'अस्मी-स्नान' पढ़ी। इस सम्बन्धमें तुम मेरी रायका विश्वास करोगे या नहीं तुम्हारे ही शब्दोंमें प्रकट कर रहा हूँ—'आपके मुँहसे बेटेकी प्रशंसा सुननेसे कोई फायदा नहीं।' मेरी यथार्थ राय यह है इस तरहकी मधुर कहानी बहुत दिनोंसे नहीं पढ़ी। शायद यह तुम्हारी सबसे अच्छी कहानी है। अनावश्यक आडम्बर नहीं है। लोगोंका दोष दिखाना संसार के कष्टोंको सामने रखना, इत्यादि कुछ नहीं है। केवल एक सुन्दर फूलकी तरह निर्मल और पवित्र है। मधुर अति मधुर। यही मैं चाहता हूँ। पढ़कर आनन्दके अतिरेकसे आँखें यदि गीली न हो जायँ तो वह कहानी कैसी! बहुत अच्छी बन पड़ी है। उपीन आन्तरिक अभिप्राय प्रकट कर रहा हूँ। बीच-बीचमें ऐसी ही कहानी पढ़नेको मिलनी चाहिये। हाँ, मुझे खुश करना कठिन काम है। लेकिन ऐसी चीज मिल जाय तो मैं और कुछ नहीं चाहता। मेरी इतनी प्रशंसासे तुम्हें शायद जरा संकोच होगा और शायद तभी मेरे साथ एकमत भी नहीं होंगे। लेकिन मुझसे अच्छा मर्मज्ञ आजके युगमें एक रवि बाबूको छोड़कर और कोई नहीं है। यह मत सोचना कि मैं गर्व कर रहा हूँ। लेकिन चाहे मेरी आत्म-निर्भरता कहो चाहे गर्व ही कहो मेरी धारणा यही है। ऐसी कहानी बहुत दिनोंसे नहीं पढ़ी थी। सुना है तुम्हारी एक बड़ी और अच्छी कहानी 'भारतवर्ष'में प्रकाशित हुई है। 'भारतवर्ष' अभी पहुँचा नहीं। नहीं कह सकता

वह वैसी बनी है लेकिन यदि भाव और माधुर्यमें ऐसी ही बन पड़ी हो तो वह भी निश्चय ही बहुत अच्छी कहानी होगी।

इसके अलावा तुम्हारे लिखनेकी शैली बहुत सुन्दर है। मैं यदि ऐसी सुन्दर भाषा पाता, भाषापर इसी तरहका अधिकार पाता, तो शायद मेरी कहानी और भी अच्छी होती। हाँ, मैं अपने साथ तुम्हारी तुलना नहीं कर रहा हूँ। इससे शायद तुम्हें संकोच होगा। लेकिन हर्ष होनेपर मैं उसे दबाकर नहीं रख सकता।

आजकल कैसे हो? मैं बहुत अच्छा नहीं हूँ। यह वर्षाकाल मेरे लिए बड़ा ही दुःसमय है। ११-१२ दिन ज्वर हुआ था, दो दिनसे अच्छा हूँ। मेरा प्यार।

—शरत्

२

[प्रमथनाथ भट्टाचार्यको लिखित]

पी. ए. जी. का दफ्तर
रंगून २१-१-१२

प्रमथ, तुम्हारी चिट्ठी मिली। आज ही जवाब दे रहा हूँ। ऐसा तो नहीं होता। जो मेरे स्वभावको जानता है, उसके सामने अपने सम्बन्धमें इतनी अधिक कैफियत देना बेकार है?

मेरे सम्बन्धमें कुछ जानना चाहते हो। संक्षेपमें वह कुछ-कुछ इस प्रकार है।—

१ शहरके बाहर एक छोटे-से मकानमें नदीके किनारे रहता हूँ।

२ नौकरी करता हूँ। ९० रु. वेतन मिलता है और १० रु. भत्ता। एक छोटी दूकान भी है। खाये-खर्चे किसी तरह काम निकल जाता है। पूँजी कुछ भी नहीं है।

३ जिगरकी बीमारी है। किसी भी क्षण

४ पढ़ा है बहुत। लिखा प्रायः कुछ भी नहीं। पिछले १० वर्षोंमें शरीर विज्ञान, जीवविज्ञान, मनोविज्ञान और कुछ इतिहास पढ़ा है। शास्त्र भी कुछ पढ़ा है।

५. आगसे मेरा सब-कुछ ही जल गया है। पुस्तकालय और 'चरित्रहीन' उपन्यासकी पाण्डुलिपि भी। नारीका इतिहास करीब चार-पाँच सौ पृष्ठ लिखा था, वह भी जल गया।

इच्छा थी इस वर्ष छपवाऊँगा। मेरे द्वारा कुछ हो यह शायद होनेका नहीं इसीलिए सब-कुछ स्वाहा हो गया। फिर शुरू करूँ, ऐसा उत्साह नहीं हो रहा है। 'चरित्रहीन' ५ ० पृष्ठोंमें प्रायः समाप्त हो चला था। सब-कुछ गया।

तुम्हें एक और खबर देना बाकी है। तीनेक साल पहले जब हृदयकी बीमारीके पहिले लक्षण दिखाई पड़े, तब मैंने पढ़ना छोड़कर तैलचित्र अंकन शुरू किया। पिछले तीन वर्षोंमें बहुत-से तैल-चित्र इकट्ठे हुए थे। वे भी भस्मीभूत हो गये। अंकनका केवल सामान भर बच गया है।

अब मुझे क्या करना चाहिये अगर यह बतला दो तो तुम्हारी रायके मुताबिक कुछ दिनोंतक चेष्टा कर देखूँ। उपन्यास, इतिहास, चित्रकारी, कौन सा ! किसको फिर शुरू करूँ बतलाओ तो !

तुम्हारे स्नेहका
—शरत्

---

४ अप्रैल १९११ रंगून

प्रमथ, तुम्हारी पहलेवाली चिट्ठीका अभीतक जवाब नहीं दिया। सोच रहा था तुम क्या मुझे क्यों इतना प्यार करते हो। मैं इस बातको बहुत दिनोंसे सोचता हूँ।' प्रमथ एक अहंकार करूँगा माफ करोगे !

अगर माफ करो तो कहूँ। मुझसे अच्छा उपन्यास या कहानी एक रवि बाबूके सिवा और कोई नहीं लिख सकेगा। जब यह बात मनसे और ज्ञानसे सच्ची प्रतीत होगी उसी दिन निबन्ध या कहानी या उपन्यासके लिए अनुरोध

करना । इसके पक्षमें नहीं । तुमसे मेरा यह एक बड़ा अनुरोध रहा । इस विषयमें मैं झूठी खातिरदारी नहीं चाहता । मैं सत्य चाहता हूँ

---

१७ अप्रैल १९११ रंगून

प्रमथ, तुम्हारा पत्र कल मिला आज जवाब दे रहा हूँ। 'चरित्रहीन' का जितना हिस्सा फिरसे लिखा था (और बहुत दिनोंसे नहीं लिखा) कमसे कम तुम्हें पढ़नेके लिए भेजनेकी बात सोची है। अगली मेलसे अथवा इसी सप्ताहके भीतर ही भेजूँगा। लेकिन और कुछ भी नहीं कर सकता। पढ़कर वापिस भेज देना। इसका पहला कारण यह है कि इसके लिखनेकी शैली तुम लोगोंको किसी भी हालतमें अच्छी नहीं लगेगी। पसन्द करोगे या नहीं इस विषयमें मुझे घोर सन्देह है। इसीलिए उसे छापना मत। समाजपति महाशयने अत्यन्त आग्रहके साथ उसे माँगा था क्योंकि उन्हें सचमुच ही अच्छा लगा है। 'मेरी ये सब वाहियात रचनाएँ हैं। इनके यथार्थ भावोंको ठीक उठाकर कौन समझेगा और कौन इसे पसन्द करेगा?' तुम अगर सचमुच ही समझते हो कि यह तुम्हारी पत्रिका (भारतवर्ष) में छापने लायक है तो हो सकता है कि छापनेके लिए अनुमति दे दूँ, नहीं तो तुम केवल मेरे मनकी ओर दृष्टि रखकर जिससे मेरी ही चीज छपे ऐसी चेष्टा किसी भी हालतमें नहीं कर सकते। निरपेक्ष सत्य—साहित्यमें मैं यही चाहता हूँ। इसमें मैं रियायत नहीं चाहता। इसके अलावा तुम्हारे हिस्सेदार (द्विजेन्द्रलाल राय) सहमत होंगे कि नहीं कहा नहीं जा सकता। अगर कोई आंशिक परिवर्तन जरूरी समझता है तो यह नहीं होगा। उसकी एक भी लाइन नहीं छापने दूँगा। पर एक बात कह दूँ। केवल नाम और प्रारम्भको देखकर ही 'चरित्र हीन' मत समझ बैठना। मैं नीतिशास्त्रका एक विद्यार्थी हूँ सच्चा विद्यार्थी। नीति शास्त्र समझता हूँ और किसीसे कम समझता हूँ मेरा ऐसा खयाल नहीं। जो कुछ भी हो पढ़कर लौटा देना और निडर होकर अपनी राय लिखना। तुम्हारी रायकी कीमत है। लेकिन राय देते समय मेरे गम्भीर उद्देश्यको याद रखना। यह कोई बाजारू किताब नहीं है। अगर छापनेके लायक समझना तो कहना मैं आखिरी हिस्सेको लिख दूँगा। उसमें मैं

जानता ही हूँ। मैं उल्टा-सीधा जैसा कलमकी नोकपर आया वहीं लिखता। इसके ही उद्देश्य लेकर लिखता हूँ और वह घटनाक्रममें सरल नहीं चलता। वैशाखकी 'यमुना' कैसी लगी? 'पथ-निर्देश' का समस्त किया? शीघ्र उत्तर देना।—

---

२४ मई १९११ रंगून

प्रमथ, रंगून-गजटमें हिमूबाबूकी मृत्युका समाचार पढ़कर आश्चर्यचकित हो गया। उन्हें मैं कम जानता था ऐसी बात नहीं। हाँ तुम्हारी तरह जाननेका अवसर नहीं मिला है। लेकिन जितना जानता था मेरे लिए वह बहुत कम नहीं था।

उनके सम्मानकी रक्षाके लिए मुझसे जो कुछ बन पड़ता वह अवश्य ही करता। वह साहित्यिक और योद्धा थे। वह मेरा मूल्य समझते थे और नहीं समझनेपर उनके सामने भी मुझे लज्जा नहीं थी। इसलिए सोचा था कि लिख भेजूँगा। पसन्द होनेपर वे प्रकाशित करेंगे नहीं होनेपर नहीं करेंगे। इसमें लज्जा-अभिमानका कारण नहीं था। लेकिन अब ऐरे-गैरे-नत्थू-खैरे मेरा दाम लगायेंगे। हो सकता है कहेंगे प्रकाशित करनेके लायक नहीं है। हो सकता है कहेंगे कि फाड़कर फेंक दो या वापस कर दो। अतएव भाई मुझे क्षमा करो। तुम मेरे कितने बड़े सुहृद् हो यही मैं जानता हूँ। इस बातको एक दिनके लिए भी नहीं भूलूँगा। तुमने मुझे गलत समझा मुझपर क्रोध किया तो भी मेरे मनका भाव अटल रहेगा। लेकिन वह दूसरी बात है। दूसरेकी पत्रिकाके लिए मैं अपनी मर्यादाको नष्ट नहीं करूँगा। मैं छोटी पत्रिकामें लिखता हूँ, मगर वही मेरे लिए काफी है। मुझे वहाँ सम्मान मिलता है, श्रद्धा मिलती है इससे अधिक और किसी चीजकी आशा नहीं करता। एक बात और 'चरित्रहीन के सम्बन्धमें।' लिखा है बाबूने भी उन्हें सूचित किया है—कहा जाता है कि वह इतना अनैतिक है कि किसी पत्रिकामें प्रकाशित नहीं हो सकता।—शायद ऐसा ही होगा क्योंकि तुम लोग मेरे शत्रु नहीं हो कि मिथ्या दोषा रोपण करोगे। मैं भी सोच रहा हूँ कि लोग बहुत संभव है इसी तरह पढ़के इसे ग्रहण करेंगे।

मैं अपने नामके लिए कुछ भी नहीं सोचता, लोगोंकी जैसी इच्छा हो मेरे संबंधमें सोचें।—जाने दो इस बातको। काल ही मेरा विचार करेगा। मनुष्य सुविचार-अविचार दोनों ही करेगा, इसके लिए चिन्ता करना भूल है।" मैं केवल पद्य ही नहीं लिख पाता, बाकी सब-कुछ लिख सकता हूँ। मैं सम्पादकके निकट अपनी किसी चीजोंकी परीक्षा नहीं करा सकता। यह मेरे लिए असाध्य है। हाँ रवि बाबूको छोड़कर।

३

[फणीन्द्रनाथ पालको लिखित]

पी ए. जी का दफ्तर
रंगून, जनवरी १९१३

फणीबाबू, आप लोग कैसे हैं? बराबर चिट्ठी देना न भूलें। मेरे लिए जो कुछ संभव है करूँगा। उमीन कहाँ है? भवानीपुर कब आयेगा? मुझे 'चन्द्रनाथ' कब भेजेंगे? मुझे क्या करना होगा, आप बतलायें। नहीं बतलाने पर मुझसे विशेष काम-काज नहीं होगा। आनेके बादसे मैं पेचिश और बुखार भुगत रहा हूँ। नहीं तो अबतक शायद कुछ लिखता। फिर भी एक चिट्ठी लिखें। शचीनको मेरी बात याद दिला दें।

—शरत्

रंगून, (माघ) १९१३

प्रिय फणीन्द्रबाबू, 'रामकी सुमति' कहानीका अंतिम हिस्सा भेज रहा हूँ। उसके संबंधमें आपसे कुछ कहना जरूरी समझता हूँ। कहानी कुछ बड़ी हो गई है। शायद एक बारमें प्रकाशित नहीं हो सकेगी। लेकिन हो सके तो अच्छा होगा। जरा छोटे टाइपमें छापनेसे और दो-एक पृष्ठ अधिक देनेसे हो सकती है। छोटी कहानीका क्रमशः छपनेसे उतना अच्छा नहीं होता। विशेषतः आपकी पत्रिकाका अब बहुत प्रचार होना चाहिये। यद्यपि मेरी सारी कहानी लिखनेकी

तबीयत आजकल कुछ कम हो गई है। पर आशा करता हूँ कि दो-एक महीनेमें अभ्यास ठीक हो जायेगा। मैं प्रतिमास छपी कहानी १०, १२ पृष्ठोंकी और निबन्ध भेजूँगा। कहानी अवश्य ही, क्योंकि आजकल इसका समादर कुछ अधिक है।

अगली बार जिसमें कहानी छोटी हो इधर ध्यान रखूँगा। एक बात और। आप समालोचकोंसे मेल रखें। उनकी पत्रिकामें अगर आपकी पत्रिकाकी थोड़ी-बहुत आलोचना रहे तो अच्छा होगा। इस बारके 'साहित्य'में मेरे नामसे *न जाने क्या कूड़ा-करकट छापा है। यह क्या मेरा लिखा हुआ है? मुझे* तो तनिक भी याद नहीं है और अगर है भी तो उसे छापा क्यों? आदमी बचपनमें बहुत-कुछ लिखता है, तो क्या उसे प्रकाशित करना चाहिये? आपने 'बोझा' छाप कर मुझे मानो लज्जित कर दिया है। उसी तरह समालोचकने भी मानो उसे छापकर मुझे लज्जित किया है। अगर सुधीनको चिट्ठी लिखें तो यह अनुरोध अवश्य कर दें कि मेरी रायके बगैर कुछ भी न छापें। आवश्यक होनेपर मैं कहानियाँ बहुत लिख सकता हूँ—आपकी पत्रिका तो नन्हीं-सी है। उस तरहकी *तिगुनी-चौगुनी* पत्रिकाको अकेले ही भर दे सकता हूँ। इसके अलावा मेरे लिए एक सुभीता और है। कहानीके अलावा सभी प्रकारके विषयों पर निबन्ध लिख सकता हूँ। अगर आपको आवश्यकता हो तो लिखें। कोई भी विषय हो मैं तैयार हूँ। 'रामकी सुमति' कई बारमें छपेगी या एक बारमें, मुझे लिखें। तब तो पौषके लिए और लिखनेकी आवश्यकता नहीं होगी।

'चरित्रहीन' प्रायः समाप्तिपर है। पर प्रातःकालको छोड़कर रातको मैं नहीं लिख पाता। रातको मैं बैठकर पढ़ता हूँ।

एक बात और। आप 'यमुना'में प्रकाशनार्थ उपन्यास, कहानी और निबन्ध छपनेके पहले मुझे एक बार दिखा लें, तो बड़ा अच्छा हो। यही सर्वांश कि पौषके लिए जिन चीजोंको चुना है, उन्हें इस समय अर्थात् महीनेभर पहिले यदि मुझे भेज दें, तो मैं चीजोंको छाँट दिया करूँ। पौषकी 'यमुना' बहुत अच्छी नहीं हुई है। अन्तिम कहानी अच्छी नहीं बनी है। हाँ इससे अवश्य खर्च बढ़ जायेगा (डाक-टिकट), लेकिन पत्रिका अच्छी हो उठेगी। इसके वास्ते करनेका खर्च मैं दूँगा। लेकिन निबन्धोंको भेज देनेपर मैं जरा देख लूँ, ऐसी

इच्छा होती है। पहले ही कह चुका हूँ मैं केवल कहानियाँ ही नहीं लिखता, सब तरहका लिख सकता हूँ। हाँ कविता नहीं लिख पाता। अच्छा आप सौरीन्द्र बाबूके जरिए या उपीन्द्र सुरेश गिरीनसे कहकर निबन्धादिकोंकी रचना—कविता लेनेकी चेष्टा क्यों नहीं करते? उनके वह भाई विभूतिको शायद आप भी पहिचानते हैं। उनको लिखनेपर निरुपमासे निबन्ध अथवा कविता तो मिल ही सकती है। बहुतोंसे उनकी कविता और निबन्ध अच्छे होते हैं।

मुझसे जितना उपकार हो सकेगा, अवश्य ही करूँगा। वचन दिया है उसके अनुसार काम भी करूँगा। शरीरके अन्दर कितनी भी नीचता क्यों न प्राप्त करे, इधर अब भी वह नहीं आई है। इसके सिवा यह मेरा पेशा नहीं है। मैं पेशेवर लेखक नहीं हूँ। और कभी होना भी नहीं चाहता।

मैं अगर मतलबी होता, तो आपको सुभीता हो सकता था। लेकिन इस देशको मैं शायद किसी तरह नहीं छोड़ सकूँगा। मैं मजेमें हूँ। खामख्वाह मुश्किलमें नहीं आना चाहता, और आऊँगा भी नहीं। अपनी बात यहींतक।

अगले वर्षसे यदि आप पत्रिकाको कुछ बड़ी कर सकें, कुछ मूल्य बढ़ा कर, तो चेष्टा करें। प्रत्येक अंकमें पढ़नेके लायक चीजें रहें इस तरह कर दें। इसीलिए कहता हूँ कि कहानियोंको एक ही अंकमें छपना अच्छा होता है। क्या कुछ कमी उठाकर भी उसमें बहुत-कुछ विज्ञापन जैसा होगा।

उपेनने मुझे कई बार लिखा कि वह 'चन्द्रनाथ' भेज रहा है। लेकिन अभीतक नहीं मिला। शायद उसे नहीं मिल रहा है। अगर आप 'चन्द्रनाथ'को छापना चाहें तो मैं उसे नये सिरेसे लिख दूँगा। भवानीपुरके लोगोंके मुँहसे मैंने सुन लिया है कि कैसी चीज है। मुझे कुछ-कुछ याद भी है। अतएव नये सिरेसे लिख देना मुश्किल नहीं है। अगर आपको इस तरहकी नई रचनाएँ चाहिये तो मुझे सूचित करें।—शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

रंगून १३—२—१३

प्रिय फणीबाबू, अभी-अभी आपका पत्र मिला। पहली बात—'बंगवासी'में क्रोड़पत्र आदि निकालकर निरर्थक फिजूलखर्ची न करें। आप क्या भी न

फरमायें । आपकी पत्रिकामें अगर अच्छी चीज रहती है तो आज हो या कुछ दिनोंके बाद हो यह बात अपने आप प्रचारित हो जायेगी । कोई रोक नहीं सकेगा । आपका कोई डर नहीं । प्रचार करके ग्राहक इकट्ठा करना घोषपत्र देकर रुपया बरबाद करनेसे कहीं अच्छा है ।

दूसरी बात—'रामकी सुमति'को छोटे रूपमें एक ही बारमें छापना अच्छा होगा । इस तरहकी छोटी कहानियोंको क्रमशः छापना अच्छा नहीं होता । जो कुछ भी हो, जब नहीं हुआ तो उसकी आलोचना वृथा है । मैं दो दिनोंके अन्दर ही एक कहानी और भेजूँगा । मेरी रायमें 'रामकी सुमति'से यह अच्छी होगी पर मुश्किलकी बात यह है कि प्रायः उसी तरह बड़ी हो गई है । बड़ी कोशिश करनेपर भी छोटी नहीं हो सकी । भविष्यमें चेष्टा कर देखूँगा कि क्या होता है ।

तीसरी बात—'चन्द्रनाथ'को लेकर शायद कुछ बखेड़ा है । इसीलिए कहता हूँ कि उससे कोई फायदा नहीं । 'चरित्रहीन' प्रकाशित किया जा सकेगा । हाँ उसके लिए पत्रिका कुछ बड़ी करनी चाहिये लेकिन मूल्य कितना होगा और कबसे बढ़ायेंगे यह लिखें । मूल्य बढ़ाये बगैर पत्रिका बड़ी करके घरका आटा गीला करना ठीक नहीं होगा ।

चौथी बात—समाजपतिसे अनबन न करें यही कहा है । उनकी खुशामद करनेके लिए नहीं कहा । फणीबाबू, आपकी दूकानका माल अगर खरा है तो आज हो या चार दिन बाद खरीददार जमा होंगे ही । माल अच्छा नहीं होने पर हजार कोशिश करनेपर भी दूकान नहीं चलेगी । दो-चार दिनमें हो या महीनेमें, दिवाला पिट ही जायेगा ।

मेरे बचपनकी ऊल-जलूल रचनाओंको छापकर मुझे कितना लज्जित किया जा रहा है और मेरे साथ कितना अन्याय किया जा रहा है इसे मैं लिखकर व्यक्त नहीं कर सकता । समाजपतिने समझदार होनेपर भी इस तरहकी रचना कैसे छाप दी यह अचरजकी बात है ।

पाँचवीं बात—योगीन बाबूसे आपका मेल-जोल कैसा है । उन्होंने क्या मेरी 'दीदी'की आलोचना देखी है ! शायद खूब गुस्सा हुए होंगे न ! लेकिन मेरा दोष क्या ! जिन्होंने किया है वही जिम्मेदार हैं । इसके अलावा इन रचनाओंको उन्होंने छोटे रूपमें छापा है न !

छठी बात—मेरी नई कहानी (जिसे मैं दो-एक दिनमें ही भेजूँगा) किस महीनेमें छपेगी ? चैत महीनेमें 'रामकी सुमति' खत्म होगी। अतएव इस महीनेमें नहीं वैशाखमें दें। लेकिन किस महीनेमें भी दें छोटे टाइपमें छपनेपर जगह कम लगेगी। यद्यपि ग्राहकोंको पढ़नेकी चीज अधिक मिलेगी।

सातवीं बात—वैशाखसे पत्रिका सर्वांगसुन्दर होनी चाहिये। चित्रके पीछे काफी रुपया बरबाद नहीं करके, उन रुपयोंको किसी और तरीकेसे पत्रिकामें लगाया जा सके, तो अच्छा होगा। हाँ मैं नहीं जानता कि ग्राहक चित्र चाहते हैं या नहीं। अगर फैशन यही है तो निश्चय ही देना होगा। आप मुझे निबन्ध, कहानी आदिके चुनावमें जरा सा स्थान दें, तो अच्छा हो। मैं देख-सुन लिया करूँ। मुफस्सिलोंमें आकर या नाम देखकर कूड़ा-करकट देना शुरू है।

आठवीं बात—श्रीमती निरुपमा देवी अगर कृपा करके अपनी रचना आपको देती हैं तो अवश्य ही अच्छी बात है। उनकी कविता लिखनेकी शक्ति अपूर्व है। श्रीमती अनुरूपा देवीकी रचना पाना शायद दुःसाध्य है। वह 'भारती'में लिखती हैं। आपके यहाँ लिखेंगी कि नहीं यह कहा नहीं जा सकता। लिखनेपर भी शायद नाक भौंह सिकोड़कर जैसा-तैसा लिखेंगी। यह सब बड़ी अधिकारी हैं। इनका शायद यमुना जैसी छोटी पत्रिकामें लिखनेकी प्रवृत्ति ही नहीं होगी। पर जरा कोशिश कर देखें। मिल जाय तो अच्छा ही है और न मिले तो भी अच्छा है। मेरे तीन नाम हैं—

आलोचना निबन्ध इत्यादि—अनिला देवी

छोटी कहानियाँ—शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

बड़ी कहानियाँ—अनुपमा

सब-कुछ एक ही नामसे देनेपर लोग समझेंगे कि इनके पास इस आदमीके सिवा और कोई नहीं है।

यहाँ मेरे एक मित्र हैं उनका नाम है प्रफुल्ल भादुड़ी बी० ए०। अच्छे दार्शनिक हैं। निबन्ध बहुत अच्छा लिखते हैं। हाँ नाम नहीं है, क्योंकि किसी मासिक पत्रिकाके लेखक नहीं हैं। मैंने इनसे अनुरोध किया है आपकी 'यमुना'में लिखनेके लिए। लिखा तो भेज दूँगा।

असुविधा यह है कि 'यमुना' का आकार छोटा है। इसमें अधिक प्रवास

नहीं चल सकता, दाम भी कम है। अचानक दाम बढ़ानेकी चेष्टा कहाँतक सफल होगी यह नहीं कहा जा सकता। अगर नितान्त ही सम्भव न हो तो कुछ दिनोंके बाद चार महीनेसे ग्राहकोंका मत लेकर और यह सिद्ध करके कि अधिक दाम देकर वे घाटेमें नहीं रहेंगे मूल्य और आकारमें क्या वृद्धि नहीं की जा सकती? आप खुद बहुत धीमे आदमी हैं। लेकिन ऐसा करनेसे नहीं चलेगा। आपने जब और दूसरा कुछ नहीं करनेका फैसला किया है, तो इसी चीजको जरा विशेष श्रद्धाकी नजरोंसे देखनेकी चेष्टा करें और जिसे 'सांसारिक बुद्धि' कहते हैं उसकी भी अवहेलना न करें। 'प्रवासी' आदि किसी समयकी छोटी पत्रिकाएँ अब कितनी बड़ी हो गई हैं। आपने मुझे पुस्तक-लेखकोंकी आलोचना लिखनेको कहा है। लेकिन मेरे पास बंगला पुस्तकें नहीं हैं। मासिक पत्रिका एक भी नहीं लेता। मुझे कहाँ क्या मिलेगा कि आलोचना लिखूँ। लिखनेसे लोगोंकी दृष्टि अवश्य ही आकर्षित होती है और एक बहस छिड़नेका उपक्रम हो जाता है। मैं यह जानता हूँ। अगर नहीं होता है तो भी चिन्ताकी कोई बात नहीं। मेरी आलोचनामें अगर गलती रहती है और अगर उसे कोई सिद्ध कर सके (कर सकना यद्यपि कठिन है), तो यह भी अच्छी बात है।

यहाँ मुझे एक बात और कहनी है। मेरी लिखाई-पढ़ाईमें कुछ क्षति हो रही है। सवेरेका पूरा वक्त किसी दिन आपके लिए और किसी दिन 'चरित्रहीन'के लिए नष्ट हो रहा है। हाँ, पढ़नेको वक्त मिलता है। लेकिन नोट करना इत्यादि नहीं हो पा रहा है। कई दिनोंसे एक और बात सोच रहा हूँ। कभी-कभी इच्छा होती है कि हर्बर्ट स्पेंसरके पूरे समन्वयात्मक दर्शन (Synthatic Philosophy) की एक बंगला समालोचना—नहीं आलोचना—और यूरोपके अन्यान्य दार्शनिक जो स्पेंसरके शत्रु-मित्र हैं उनकी रचनाओंपर एक बड़ा धारावाहिक निबन्ध लिखूँ। हमारे देशकी पत्रिकाओंमें केवल अपने सांख्य और वेदान्त, द्वैत और अद्वैतके अलावा और किसी तरहकी आलोचना नहीं रहती। इसीलिए बीच-बीचमें यह इच्छा होती है। क्या करूँ, बतलाइये? अगर आपकी पत्रिकामें स्थान न हो (होना सम्भव नहीं) तो इस तरहकी कोई पत्रिका बतला सकते हैं जो छाप सकती है?

आप मुझे बराबर चिट्ठी लिखा करें। यहाँ लिखनेसे मुझमें मानों इच्छा नहीं रह जाती। इसे भी एक काम समझें। रचनाएँ रजिस्ट्री करके ही भेजिए। खर्च आप क्यों देंगे? मेरी ऐसी बुरी दशा नहीं है कि इसके लिए खर्च लेना पड़े। ये बातें फिर न लिखें।

आशीर्वाद देता हूँ आपकी दिनोंदिन श्रीवृद्धि हो—यही मेरा पारिश्रमिक हो।

'चन्द्रनाथ' अब न माँगें। अगर आवश्यकता हुई तो मैं फिर लिख दूँगा। यह रचना अच्छी छोड़कर बुरी न होगी।

मेरे तीन तरहके नामोंके बारेमें आपकी राय है? मेरा ख्याल है, इससे सुभीता होगा। एक नामसे अधिक लिखना अच्छा नहीं। क्यों?

उपेन्द्र क्या कहता है? वह तो चिट्ठी-पत्री लिखनेका नहीं। उसके रहनेसे बहुत सुभीता था, नहीं रहनेसे काफी परेशानी होती है। उस व्यक्तिका आपके प्रति अत्यधिक स्नेह था। उससे काम करा सकें तो पैसासे बाज न आयें।

जो कुछ भी हो और जैसा भी हो, घबरायें नहीं और चिन्तित न हों। मैं आपको छोड़कर कहीं जाऊँगा या किसी लोभसे जानेकी चेष्टा करूँगा इस तरह की बात कभी मनमें भी न लायें। मेरा सब कुछ ही दोषोंसे भरा नहीं है।

आप पहले इस विषयमें मुझे सतर्क करनेके लिए पत्रमें लिखते थे कि दूसरी पत्रिकावाले मुझसे अनुरोध करेंगे। करें ही करें, चैरिटी घरसे शुरू होती है (Charity begins at home), सच है न? जरा खासी ध्यान दें। मेरा आशीर्वाद लें। इति।

—शरत्चन्द्र चट्टो०

[पौष १३१९]

प्रिय फणीबाबू, आपके निबन्ध वापिस भेजे हैं। दोनों निबन्ध बुरे नहीं हैं, दिये जा सकते हैं। चतुप्र किया निबन्ध अच्छा है।

'चन्द्रनाथ'को लेकर बड़ी गड़बड़ी हो रही है। छपवाने और हाथमें पाने बगैर विज्ञापन आदि देना पहले सिरेकी नादानी है। वे लोग 'चन्द्रनाथ' नहीं देंगे। उसके लिए बेकार चेष्टा न करें। पर कुछ-कुछ नकल करके भेजेंगे। मेरी तनिक भी इच्छा नहीं है कि मेरी पुरानी रचनाएँ ज्योंकी त्यों प्रकाशित हों।

बहुत गलतियाँ हैं। उन्हें सुधारनेका मौका मिले तो छप सकती हैं, अन्यथा हरगिज नहीं। एक 'काशीनाथ'को लेकर मैं काफी लज्जित हुआ हूँ। छल-मित्रोंसे फिर इस तरहकी लज्जा मिले, यह मैं नहीं चाहता। उन्होंने अवश्य ही मंगल-कामना की है। लेकिन मेरा मत लोगोंमें आने बदल गया है। 'चन्द्रनाथ'को पसन्द रक्खें। 'चरित्रहीन'को ज्येष्ठ महीनेसे शुरू करें और 'चन्द्रनाथ' वैशाखसे शुरू हो गया हो (हाँ उस हालतमें दूसरा चारा नहीं) तो मुझे काफी हिस्सेमें परिवर्तन-परिवर्धन इत्यादि करना ही होगा। वैशाखमें कितना छपा है देख लेने-पर मुझे बाकी हिस्सा न मिला तो भी थोड़ा-थोड़ा करके लिख दूँगा। अगर वैशाखमें न छपा हो तो 'चरित्रहीन' छपेगा।

मैं 'चरित्रहीन'के लिए बहुतेरी चिट्ठियाँ पा रहा हूँ। कोई रुपयेका लोभ, कोई सम्मानका लाभ कोई दोनों ही कोई मित्रताका अनुरोध भी कर रहे हैं। मुझे कुछ भी नहीं चाहिये। आपने कहा है कि आपका जिसमें मंगल होगा वही करूँगा। मैं बात नहीं समझता।

आप कृपा कर इस पते पर फाल्गुन चैत और वैशाखकी 'यमुना' भेजें— श्री प्रमथनाथ भट्टाचार्य, १९, युगलकिशोरदास लेन कलकत्ता।

ये लोग अर्थात् गुरुदास बाबूके पुत्र अपनी नई पत्रिकामें मेरी रचनाओंके लिए विशेष चेष्टा कर रहे हैं। हाँ मेरे प्रियतम मित्र प्रमथकी खातिर। लेकिन यह बात मेरी है। जो कुछ भी हो फाल्गुन चैतकी 'यमुना' उनको दें। उन्होंने और उनके दलने मेरे 'काशीनाथ'के सम्बन्धमें कुछ गुप्त समालोचना की है। और एक बात है कि 'यमुना'को छोड़कर मैं और किसी पत्रिकामें नियमित रूपसे नहीं लिखूँगा। इससे भी एक काम बनेगा। मेरी रचनाओंकी अवहेलना करनेकी हिम्मत उन्हें भी नहीं होगी। मैं मूर्ख नहीं हूँ, इस बातको समझ जानता है।

निरुपमाको अपने दलमें खींचनेकी चेष्टा करना। वह सचमुच ही अच्छा लिखती है। और बाजारमें नाम भी है। बहुधा और अधिकांशमें मुझसे उनकी रचनाएँ अच्छी होती हैं—ऐसी मेरी धारणा है। इस बीचमें 'मानसी'के श्रीयुत फकीर बाबूसे अगर मुलाकात हो तो कहें कि उनका पत्र मिला और शीघ्र ही उत्तर दूँगा। मुझे भी बुखार है। इसीलिए पत्र नहीं दे पा रहा हूँ—शीघ्र दूँगा।

क्या आप एक बात बतला सकते हैं? और कितने दिनोंतक 'साहित्य' पत्रिकामें मेरा नाम दिया रहेगा? लोग शायद सोचेंगे कि मुझमें लिखनेकी क्षमता 'काशीनाथ' से अधिक नहीं है। इससे नाम बिगड़ता है। उपीन बेचारेको शायद इस बातका ख्याल भी नहीं है। फिर भी उसने मेरी आन्तरिक हित-कामनाके लिए ही ऐसा किया है, इसीलिए किसी तरह सह लिया। और दूसरा चारा नहीं। पर पूछता हूँ क्या उनके पास उस तरहकी कहानियाँ और हैं? अगर हैं तो देखता हूँ मुसीबतमें पड़ूँगा। आपसे एक बात और कह दूँ। उस दिन गिरीनकी चिट्ठी मिली। 'चन्द्रनाथ'को लेकर उन लोगोंसे उपीनको कहा सुनी हो गई है। वे लोग यद्यपि आपके विरुद्ध नहीं हैं तथापि इस घटनासे और 'काशीनाथ'के 'साहित्य'में प्रकट होनेके कारण वे लोग 'चन्द्रनाथ' देनेके लिए तैयार नहीं। वे लोग मेरी रचनाओंको बहुत चाहते हैं। उन्हें डर क्या लगता है कि कहीं खो न जाय और कहीं किसी दूसरी पत्रिकावालेके हाथोंमें न पहुँच जाय, इसलिए सुरेनने थोड़ा-थोड़ा हिस्सा नकल करके भेजनेका इरादा किया है। अगर वैशाखमें 'चन्द्रनाथ' छप गया है, तो मुझे चिट्ठीसे या तारसे 'हाँ-ना' लिख भेजें। तब मैं सुरेनसे एक बार फिर अनुरोध कर देखूँगा। यह कहकर अनुरोध करूँगा कि दूसरा चारा नहीं है, देना ही होगा। अगर छपा नहीं है तो अच्छा ही है क्योंकि फिर तब 'चरित्रहीन' छप सकेगा।

मुझे कहानियाँ और निबन्ध भेजें। बाकी चीजें आप ही देख लें। जैसी तैसी कहानियाँ कमसे कम मेरा नाम रहते न छपें यही मेरा अभिमान है।

बहुत जल्दीमें चिट्ठी लिख रहा हूँ (कामके बीच ही) इसीलिए सारी बातें गड़बड़से नहीं सोच पा रहा हूँ। लेकिन जो कुछ लिख रहा हूँ उसे ठीक समझें।

द्विजू बाबूको सम्पादक बनाकर बड़ी धूम-धामके साथ हरिदास बाबू पत्रिका निकाल रहे हैं। अच्छी बात है। वे रुपया देंगे अतएव रचनाएँ भी अच्छी मिलेंगी। इसके अलावा बड़ोंकी मदद करनेके लिए सभी तैयार रहते हैं यही संसारकी रीति है। इसके लिए सोचने-विचारनेकी आवश्यकता नहीं है।

मेरे लिए जो कुछ भेजना है उसे वैशाखके पहले इसीके अन्दर ही भेज दूँगा। केवल 'चन्द्रनाथ'के बारेमें चिन्तित था। यह कैसी कहानी है वैसी

कैसी है, जाने बगैर छपना उचित नहीं इस बातका डर बना रहा है। जो कुछ भी हो बहुत जल्द ही इस विषयमें सूचना पानेकी आशामें हूँ।

तबीयत ठीक नहीं है। कल रातसे ही बुखार-सा है। बढ़े न तभी अच्छा है। आपकी तबीयत कैसी है? बुखार ठीक हुआ? इति।

आप लोगोंके स्नेहका—शरत्

---

१४ लोअर पोजाडंग-डाउन स्ट्रीट,
रंगून, १ ५ ११

प्रिय फणीबाबू, आपका पत्र मिला और प्रेषित मासिकपत्र अर्थात् 'प्रवासी', 'मानसी मरमी' 'साहित्य' इत्यादि सभी मिले। 'चन्द्रनाथ'में जो कुछ परिवर्तन उचित समझा किया और भविष्यमें भी ऐसा ही करूँगा। कहानीके तौरपर 'चन्द्रनाथ' बहुत मधुर कहानी है लेकिन अतिरेकसे पूर्ण है। लड़कपन अथवा नौजवानीमें इस तरहकी रचना स्वाभाविक होनेके कारण ही शायद ऐसा हुआ है। जो कुछ भी हो जब अब हाथमें आ गया है, तो इसे अच्छा उपन्यास बना डालना ही उचित है। कमसे कम दूना बढ़ जाना ही सम्भव है। प्रतिमास बीस पृष्ठ देनेसे बरसके पहले समाप्त होगा कि नहीं इसमें सन्देह है। इस कहानी की विशेषता यह है कि किसी प्रकारकी अनैतिकतासे इसका सम्बन्ध नहीं। सभी पढ़ सकेंगे। 'चरित्रहीन' कलाके तौरपर और चरित्र निर्माणके तौरपर अवश्य ही अच्छा है। लेकिन इस तरहका नहीं। 'चरित्रहीन'के लिए प्रमथ लगातार तगादा कर रहा था। लेकिन आखिरके तगादे इस तरहके हो गए थे कि आजन्मकी मित्रता अब जाय कि तब। इसी डरसे उसके पढ़नेके लिए 'चरित्रहीन' भेज दिया है। हाँ यह मैं नहीं जानता कि उसके मनके भाव क्या हैं। लेकिन अपने मनके भावोंको उसे साफ-साफ लिख दिया है। उसका जवाब अभीतक नहीं मिला है। मेरी उम्र हो गई है। इस उम्रमें जो कुछ बनता है उसे मर्जीके अनुसार नष्ट नहीं करता। आप मेरे बारेमें व्यर्थ ही क्यों चिन्तित होते हैं? 'यमुना'की उन्नतिकी ओर मेरा सबसे अधिक ध्यान है, इसके बाद और कुछ। 'चरित्रहीन' यहीं आधा लिखा पड़ा है। क्या हाल यह

भी नहीं जानता। कब समाप्त होगा यह भी नहीं कह सकता। 'चन्द्रनाथ' जिसमें आश्विन तक इस वर्ष प्रकाशित हो, इसकी चेष्टा करनी आवश्यक है। इसके बाद अर्थात् अगले वर्षसे आकार और भी बड़ा देना होगा। इस वर्ष ग्राहक कितने हैं? पिछले सालसे कम या अधिक, यह लिखें। अगर मैं दूसरी पत्रिकाओंमें लिखकर नामको अधिक प्रचारित कर सकता तो 'यमुना'का उपकारके सिवा अपकार नहीं हो सकता। लेकिन बीमारीके कारण लिख ही नहीं पाता और वह होगा भी नहीं। जल्दबाजी करनेसे नहीं चलेगा फकीरबाबू, शान्त होकर विश्वास रखकर आगे बढ़ना होगा। मैं बराबर आपके काममें मदद दूँगा। लेकिन मेरी शक्ति बहुत ही कम हो गई है परिश्रम नहीं कर सकता। एक आलोचना और लिख रहा हूँ दो-तीन दिनमें ही समाप्त होगी, यतीन्द्र ठाकुरके विरुद्ध। (शायद जरा अधिक कड़ी हो गई है।) फाल्गुनके 'साहित्य' में उन्होंने उड़ीसाकी और जातिके सम्बन्धमें एक निबन्ध लिखा था, वह शुरूसे आखिरतक गलत है। पुरातत्त्वके बारेमें (नाम कमानेके लिए) ऊल-जलूल नहीं लिखना चाहिये मेरी आलोचनाका यही उद्देश्य है। नहीं जानता यतीन्द्र ठाकुरने 'यमुना'का सम्मान किया है। उचित समझें तो छापें, नहीं तो 'साहित्य' को दे दें। मेरी वह कहानी अब भी नहीं मिली। निरुपमा देवीकी कोई रचना मिली क्या? उन्हें किसी चीजकी जिम्मेदारी दें उन्हें तो बहुत अच्छा हो। हाँ, सौरीन्द्र बाबू अगर मेरी अनुपस्थितिमें मेरा भार ले लें, तो अच्छा ही हो। शायद निरुपमा भी बहुत-सा भार ले सकती हैं। सुरेन गिरीन उपीन भी। पर वे लोग निबन्ध लिख सकेंगे कि नहीं, यह नहीं जानता। निबन्ध लिखनेके लिए आदमी अगर जरा पढ़ा लिखा हो तो अच्छा होता है क्योंकि इससे मनको बल मिलता है। किस्सा-कहानी अगर वे लिखें तो मैं केवल निबन्धोंमें ही पड़ा रहूँ। कहानी लिखना वैसा आता भी नहीं और लिखना उतना अच्छा भी नहीं लगता। उम्र हो गई है अब जरा विचारपूर्ण कुछ लिखनेकी चाह होती है। मेरा कहानी लिखना बहुत कुछ जबर्दस्ती लिखना है। जोर-जबर्दस्तीसे काम वैसा सुसम्पन्न नहीं होता। प्रमथकी अन्तिम चिट्ठी साथ भेज रहा हूँ। मेरा नाम 'अनिलादेवी' है यह कोई न जानने पावे। मैं ही हूँ इसका अनुमान लगाकर प्रमथने डी. एल. रायसे कहा है। उन्हें कड़ी चिट्ठी लिखना।

आपकी पत्रिकाको मैं अपनी ही पत्रिका समझता हूँ। इसको क्षति पहुँचा कर कोई काम नहीं करूँगा। केवल प्रमथको लेकर ही मैं संकटमें पड़ा हूँ। वह भी परिचित ही नहीं परम बन्धु, सदाका अति स्नेहका पात्र है। इसीसे जरा चिन्तित होता हूँ नहीं तो क्या। प्रमथकी चिट्ठीसे बहुत-सी बातें समझ सकेंगे। इस समय ज्वर १ २५ है। ज्वर खूनमें नहीं होता है, लेकिन मुझे ज्वर होता है दूसरे कारणोंसे—शायद हृदयसे सम्बन्धित है। इस देशका साधारण स्वास्थ्य अच्छा ही है। लेकिन मुझे बरदाश्त नहीं हो रहा है। इति।

आपका—शरत्

---

२८ मार्च १९१३

प्रिय फणीबाबू, अभी-अभी आपका रजिस्ट्री पैकेट मिला। अगर रजिस्ट्री करते हैं तो घरके पतेपर क्यों भेजते हैं? आफिसका पता ही ठीक है क्योंकि डाकिया जब घरपर आता है तो मैं आफिसमें रहता हूँ। अगर गैर-रजिस्ट्रीसे भेजते हैं तो घरके पतेपर भेजें। दोनों निबन्धोंको देखकर शीघ्र भेज दूँगा। वैशाखके लिए बड़ी गड़बड़ी दिखाई पड़ रही है। जो कुछ भी हो इस महीनेको इस तरह चलायें—(१) पथनिर्देश (२) नारीका मूल्य और अन्यान्य निबन्ध आदि। 'चन्द्रनाथ' न छपें। क्योंकि अगर छपनेके ही योग्य हो तो क्रमशः छपना होगा। जेठ महीनेसे 'चरित्रहीन' या 'चन्द्रनाथ' और भी बाद और अच्छे रूपमें क्रमशः छापें। देखें, सुरेन गिरीनको क्या जवाब देता है। वैशाखके लिए कोई खास सूरत निकलती नजर नहीं आती। हाँ आपका मेरे ऊपर दावा सर्वप्रथम है इसमें सन्देह नहीं। मैं जबतक जीवित हूँ आपको अधिक कष्ट नहीं पाना पड़ेगा। लेकिन भाई मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है। इसके अलावा किस्सा-कहानी लिखनेकी प्रवृत्ति नहीं होती। मानों मुसीबतमें पड़कर मुझे कहानी लिखनी पड़ती है। फिर भी लिखूँगा—कमसे कम आपके लिए। सचमुच ही इस बीच कहानी लिख भेजनेके लिए बहुत-से अनुरोध आये हैं। लेकिन मैं लाचार निरुपाय हूँ। उतनी कहानियाँ लिखने बैठूँ तो मेरा लिखना-पढ़ना बन्द हो जाय। मैं प्रतिदिन दो घण्टेसे अधिक कभी नहीं लिखता। दस-बारह घण्टे पढ़ता हूँ। यह शक्ति मेरी

जानी है। पर मैं हरगिज नहीं करूँगा। जो कुछ भी हो आपका वैशाख गड़बड़ी-से किसी तरह निकल जाय। इसके बादवाले महीनेसे देखा जायगा। देखिये, पहले आपके ग्राहक क्या कहते हैं। उनके भाव समझकर काम करना होगा। मेरा बड़ा भाग्य है कि आपकी माता भी मेरी ओर होती हैं। उन्हें कह दें, मैं अच्छी तरह हूँ। आशा करता हूँ, सभी कुशल हैं। वैशाखका अंक अगर उतना अच्छा नहीं होता, तो पत्रिकामें जरा इस बातका उल्लेख कर दें कि मेरी एक कहानी प्रायः प्रतिमास रहेगी।

(मेरा पता आप लिखे-लिखे क्यों दे देते हैं?) मुझे बहुतेरे लोग बड़ी पत्रिकाओंमें लिखनेके लिए कहते हैं, क्योंकि उनसे नाम अधिक होगा। आपकी पत्रिका छोटी है, कितने आदमी पढ़ते हैं! हाँ मैं भी इस बातको स्वीकार करता हूँ। लाभ-नुकसानका विचार किया जाय, तो उन्हींकी बात सच है और रुपया सभी पेश करते हैं। लेकिन मुझमें कुछ आत्म-संयम भी है और कुछ आत्म-निर्भरता भी है। इसीलिए जब जिस रास्तेको सुभीतेका समझते हैं मैं उसे सुभीताका समझनेपर भी यही मेरा एकमात्र अवलम्बन नहीं। अगर मैं चेष्टा करके छोटी पत्रिकाको बड़ा कर सकूँ, तो उसीमें लाभ समझता हूँ। इसके अलावा आपको बहुत-कुछ आश्वासन दिया है अब नीचकी तरह उसे अन्यथा नहीं करूँगा। मुझमें बहुत-से दोष हैं सही, पर मैं लोभके मारे वादेसे ही भ्रष्ट नहीं हूँ। मैं बहुधा अपना वादा कायम रखनेकी चेष्टा करता हूँ। आप चिन्तित न हों। मेरी यह चिट्ठी किसीको पढ़नेके लिए न दें। अगर वैशाखमें दिखाई पड़े कि ग्राहक घट नहीं बल्कि बढ़ रहे हैं तो आशा करनी चाहिये कि आगे और भी बढ़ेंगे। 'पथ-निर्देश' पूरा एक ही बारमें छपे। अन्यथा न छपे। एक बात और। नारीवाले लेखमें छपाईकी बहुत गलतियाँ हैं। एक जगह अनुरूपाके बदले आमोदिनीका नाम छप गया है। 'भूमके संग भूमिका' इत्यादि अनुरूपाका है, आमोदिनीका नहीं। निरुपमाको सम्मुख रखकर उसकी अधिक रचनाएँ पानेकी चेष्टा करें। वह सचमुच ही अच्छा लिखती है। वह मेरी छोटी बहन भी है और छात्रा भी।

—शरत्

(अप्रैल १९१३)

प्रिय फणीबाबू, मेरी तरफसे आपको एक काम करना होगा। मैं प्रचलित मासिक पत्रिकाओंके बारेमें एक प्रकारसे कुछ भी नहीं जान पाता, इसलिए आलोचना नहीं लिख पाता। मैं उतना बढ़िया आलोचक नहीं हूँ। अतएव इस दिशामें क्या चेष्टा करूँगा—अवश्य 'यमुना'हीके लिए। इसलिए आपसे अनुरोध है कि मेरे लिए दो-तीन मासिक पत्रिकाएँ वी पी पी से भेजनेकी चेष्टा करें। मैं चुका दूँगा। 'प्रवासी' 'साहित्य', 'मानसी' 'भारती'। रचनाएँ देकर पत्रिकाओंको मुफ्तमें लेनेकी इच्छा नहीं। और उतनी रचनाएँ पाऊँ भी कहाँ? दो-एक पत्रिकाएँ लायब्रेरीमें मिल रही हैं। लेकिन इस लायब्रेरीकी व्यवस्था अच्छा नहीं। बल्कि लज्जित हो रहा हूँ कि ये लोग अपनी पत्रिका भेज रहे हैं और परिवर्तनमें मैं कुछ नहीं दे पा रहा हूँ। मुँह खोलकर इसे सूचित करनेमें भी लज्जा हो रही है। इन बातोंको सोचकर ही आपसे यह अनुरोध कर रहा हूँ। पता—१४, लोअर पोजनडांग स्ट्रीट। वैशाखसे आवें तो बहुत अच्छा हो। मेरे दफ्तरमें पत्रिकाएँ आती हैं। लेकिन उनमें बड़ी असुविधा है। आपको अनेक प्रकारके अनुरोधोंसे बीच-बीचमें तंग करूँगा। मेरा स्वभाव ही ऐसा है। बुरा न मानें। आप उम्रमें मुझसे बहुत छोटे हैं। छोटा भाई-सा ही समझता हूँ। इसलिए बेकार खटनेके लिए कहता हूँ। दूसरी डाकसे चिट्ठी और रचनाएँ भेजूँगा। इति।

—शरत्

---

१४ लोअर पोजनडांग-डाउन स्ट्रीट,
रंगून (वैशाख १३२)

प्रिय फणीबाबू, पिछली डाकसे 'चन्द्रनाथ'का कुछ हिस्सा भेजा है। अगली डाकसे कुछ हिस्सा और भेजूँगा। अत्यन्त पीड़ित हूँ। लेखको 'यमुना'के लिए विशेष चिन्तित हूँ। सिरका दर्द इतना अधिक है कि कोई काम नहीं कर पा रहा हूँ। अक्षरोंकी ओर देखनेमें कष्ट होता है। बाध्य होकर काम-काज लिखना-पढ़ना सब-कुछ स्थगित रखा है। योगीन बाबूको मेरा आन्तरिक स्नेहाशीर्वाद कह दें। इस महीने तो किसी तरह चलाएँ। अच्छा होनेपर आषाढ़के लिए कोई चिन्ता

नहीं होगी। मैं सौरीनको चिट्ठी नहीं लिख सका। उन्होंने मुझे जो कुछ लिखा है उसे पढ़कर सचमुच ही मुझे बड़ी खुशी हुई। मुझे निकट बुलाया है—देखूं। जिसके ऐसे मित्र हैं वह बड़ा सौभाग्यशाली है। 'चरित्रहीन'को अपरिवर्तित अवस्थामें ही प्रमथको पढ़नेके लिए भेजा है। बार-बार जिद करनेके कारण मैं उसके अनुरोधकी उपेक्षा नहीं कर सका। वापिस मिलनेपर बाकी हिस्सेको लिखूंगा। कहानी इस महीने नहीं लिख पाऊँगा। क्योंकि समय नहीं है। एक आलोचना लिखनेमें हाथ लगाया था समाप्त न कर सका। समाप्त हुई तो आपके हाथोंमें पहुँचनेमें २९ तारीख हो जाएगी। अतएव इस महीनेमें काम नहीं आएगी। सचमुच ही बहुत चिन्तित हूँ। बहुतेरी चेष्टा करनेपर भी नहीं लिख पा रहा हूँ। अगर कोई लिख लेनेवाला होता तो बोल देता। वैसा कोई नहीं मिलता। 'वैतालकी यमुना' सचमुच ही अच्छी हुई है। सौरीनकी कहानी अच्छी है और निबन्ध भी अच्छा है।

—शरत्

रंगून १४ ९ १९१३

प्रियवर, आपकी माता मेरे बारेमें पूछताछ करती हैं, मेरे लिए बड़े सौभाग्य-की बात है। उनसे कह दें, मैं बिल्कुल ठीक हो गया हूँ। मेरे बारेमें पूछताछ करनेवाला संसारमें एक प्रकारसे कोई नहीं है। इसलिए अगर कोई मेरे बारेमें भला-बुरा जानना चाहता है तो सुनकर हृदय कृतज्ञतासे भर जाता है। मेरे जैसे हतभाग्य संसारमें बहुत ही कम हैं। 'उपकार कर रहा हूँ, यश, मान, स्वार्थ-त्याग कर रहा हूँ' इत्यादि मोटे-मोटे भाव मेरे हृदयमें कभी नहीं आते। कभी थे भी नहीं और आज भी नहीं हैं। पैसे पर बड़ी बात तो नहीं है। समाज भूखा होता तो उसके लिए शायद पहले ही चेष्टा करता, इतने दिनोंतक चुप नहीं रहता।' और एक बात छद्मधारी धर्मसाधक होनेमें मुझे लज्जा भी आती है। एक पत्रिकामें नियमित लिखता हूँ, यही काफी है। जो मेरी रचनाएँ पसन्द करता है, वह इसी पत्रिकाको पढ़ेगा, यही मेरी धारणा है। इसके अलावा होमियोपैथीकी मात्रामें इसमें थोड़ा उसमें थोड़ा, कुछ चमत्कारसे कुछ ऐसे-वैसे, खुशामद करके, दूसरेके मार्फत छपाकर—ये कुप्रथाएँ

बचपनसे ही मुझमें नहीं है। और इतना लिखने जाऊँ तो पढ़ना बन्द करना पड़ेगा और पढ़ना मृत्युके सिवा मैं छोड़ नहीं पाऊँगा'। मेरी छोटी कहानियाँ जाने कैसे बड़ी हो जाती हैं, यह बड़ी मुश्किलकी बात है। एक बात और। मैं कोई उद्देश्य लेकर एक कहानी लिखता हूँ और उसके स्पष्ट हुए बिना नहीं छोड़ पाता। मैंने समझा था 'बिन्दोका लल्ला' आपको पसन्द नहीं आयेगा। शायद छापनेमें *आगा-पीछा करियेगा*। इसलिए कहीं मेरे *मुलाहजेमें* आकर, अपनी क्षति करके भी प्रकाशित कर दें इस आशंकासे आपको पहलेसे ही सावधान किये दे रहा था। अर्थात् निश्चिन्त होना चाहिये। अगर सचमुच ही अच्छी लगी हो तो छापकर ठीक ही किया है। इससे पाठक कुछ भी क्यों न कहें। 'नारीका मूल्य' अगली बार समाप्त करके कुछ और शुरू करूँगा। 'नारीका मूल्य' की बहुत प्रख्याति हुई है। मैंने उस तरहके चौदह 'मूल्य' लिखना तय किया है। इस बार या तो 'प्रेमका मूल्य' या 'भगवान्‌का मूल्य' लिखूँगा। उसके बाद क्रमशः धर्मका मूल्य समाजका मूल्य आत्माका मूल्य सत्यका मूल्य साम्यका मूल्य और वेदान्तका मूल्य लिखूँगा। 'चरित्रहीनके चौदह-पन्द्रह अध्याय लिखे हैं। बाकी दूसरी कापियोंमें या रद्दी कागजोंपर लिखे हैं नकल करना होगा। इसके अन्तिम कई अध्यायोंको यथार्थमें grand बनाऊँगा। लोग पहले जो चाहे कहें लेकिन अन्तमें उनका मत बदलेगा ही। मैं झूठी बड़ाई पसन्द नहीं करता और अपना वचन समझे बगैर बात नहीं करता। इसीलिए कहता हूँ कि अन्तिम हिस्सा सचमुच ही अच्छा होगा। नैतिक हो या अनैतिक लोग जितना कहें, 'हाँ एक चीज है।' और इसमें आपको बदनामीका डर क्या! बदनामी होगी तो मेरी। इसके अलावा कौन कहता है कि मैं गीताकी टीका लिख रहा हूँ! 'चरित्रहीन' इसका नाम है।—पाठकको पहलेसे ही इसका आभास दे दिया। यह सुनीतिविधायिनी सभाके लिए भी नहीं है और स्कूल-पाठ्य भी नहीं है। अगर वे डास्टयवस्कीके 'रिकलेक्शन'का एक बार भी पढ़ते हैं तो 'चरित्रहीन'के विषयमें कहनेको कुछ भी नहीं रहेगा। इसके अलावा ये कलाके तौरपर, मनोविज्ञानके तौरपर महान् पुस्तक है उसमें दुश्चरित्रकी भ्रम धारणा रहेगी ही। क्या कृष्णकान्तके वसीयतनामेमें नहीं है? अच्छा ही सब-कुछ नहीं है, देखना काम करनेकी जरूरत है। पाँच आदमियोंको यदि यथार्थमें

शिक्षा-स्वाधीनता या सबके अनुदारताके अत्याचार आदिके विरुद्ध स्वर ऊँचा किया जाय तो इससे बढ़कर आनन्दकी बात और क्या है! आज लोग ऐसे क्षुद्र व्यक्तिकी बात न भी सुनें, लेकिन एक दिन सुनेंगे ही। इसी उद्देश्यको लेकर मैंने एक समय साहित्य-सभा बनाई थी। आज मेरी वह सभा भी नहीं है और वह शक्ति भी नहीं है।—(युगान्तर, १ माघ, १३४४)

रंगून १० १ १९११

प्रियवर तुम्हारी भेजी हुई 'बड़ी दीदी' मिली। बुरी नहीं हुई, पर यह बाल्य-कालकी रचना है। न छपती तो शायद अच्छा रहता।

आजकल मासिक पत्रोंमें जो छोटी कहानियाँ प्रकाशित होती हैं उनमें पन्द्रह आनाके बारेमें आलोचना ही नहीं हो सकती। वे न तो कहानियाँ हैं और न साहित्य ही। केवल स्याही और कलमकी फिजूलखर्ची और पाठकोंपर अत्याचार। इस बार में इतनी कहानियाँ छपी हैं लेकिन एक भी अच्छी नहीं है। अधिकांश ही असहनीय हैं। किसीमें तत्त्व नहीं भाव नहीं केवल शब्दोंका आडम्बर, घटनाओंका समावेश, और जबरदस्ती Pathos ठूँसी वेश्याको युवती सजाकर पाठकोंको भुलावेमें डालनेकी चेष्टा देखनेसे मनमें एक वितृष्णा व्यथा अथवा करुणा होती है। इन लेखकोंकी ऐसी कहानियाँ लिखनेकी चेष्टा देख कर सचमुच ही मेरे मनमें इस तरहका एक भाव उत्पन्न होता है जो और कुछ भी क्यों न हो स्वस्थ कदापि नहीं। छोटी कहानियोंकी आजकल कैसी दुर्दशा है!

दो-एक बातें 'चरित्रहीन'के सम्बन्धमें कह दूँ। इसके सम्बन्धमें कौन क्या कहता है सुनते ही मुझे मिलता। इस पुस्तकके विषयमें लोगोंमें इतने प्रकारके अभिप्राय हैं कि इस सम्बन्धमें कुछ ठीक धारणा बनाना भी कठिन है। अनैतिक (immoral) तो लोग कह ही रहे हैं। लेकिन अंग्रेजी साहित्यमें जो कुछ वास्तवमें अच्छा है उसमें इससे कहीं अधिक अनैतिक घटनाओंकी सहायता ली गई है। फिर भी साहित्यिकोंकी राय मुझे सूचित करना।

(युगान्तर, १ माघ, १३४४)

४

[श्री हेमेन्द्रकुमार रायको लिखित]

१४ लोअर पोजाउंग डाउन स्ट्रीट,
रंगून ता० १०-१-१४

प्रिय हेमेन्द्रबाबू, बीचमें बहुत दिनोंतक रंगूनमें नहीं था। कुछ दिन पहिले लौटनेपर आपकी चिट्ठी मिली। मिलते ही उसका जवाब देना उचित था। लेकिन उस वक्त शरीरकी हालत इतनी बुरी थी कि कहीं कुछ गलत न लिख बैठूँ इस आशंकासे उत्तर नहीं लिखा। बुरा न मानें। शरीरके कारण मेरे लिए सर्वदा सहज भद्रताकी रक्षा करना कठिन हो जाता है। पर भरोसा इस बातका है कि मैं बूढ़ा आदमी हूँ, आप लोगोंके सामने सदा ही क्षमाका पात्र हूँ।

'चरित्रहीन' सम्भवतः अगले वर्षके मध्यभागतक समाप्त होगा। यह ठीक बात है कि समाप्त न होनेतक साधारण पाठक इस चीजको किस तरह ग्रहण करेंगे इसका अन्दाज नहीं लगाया जा सकता। अपनी रचनाओंपर आपकी कृपा देखकर सचमुच ही आनन्दित हुआ हूँ। बहुतेरे कृपा करते हैं सही पर मेरी रचनाएँ नितान्त साधारण किस्मकी हैं। उनमें ऐसी कौन-सी विशेषता है! पर, इस सत्यको ठीक रखता हूँ कि मनके साथ रचनाका मेल बना रहे और जो सोचता हूँ वही लिख सकूँ। यह क्या सोचेगा वह क्या करेगा उधर एक प्रकारसे देखता ही नहीं। शायद इसीलिए ही बीचमें लोगोंको अच्छा भी लगता है—कभी नहीं भी लगता है। फिर भी कदाचित् दाक्षिण्य करके वे लेखकोंका अपमान नहीं करना चाहते हैं। आपकी रचनामें विशेषता है। मुझे बहुत अच्छी लगती है। बहुत दिन पहिले फणीको लिख भेजा था कि वह आपकी कृपा अधिक प्राप्त करनेकी विशेष चेष्टा करे। यह कहा जा सकता है कि बंगाली भाषापर मेरा बिलकुल अधिकार नहीं है—शब्द भण्डार बहुत ही थोड़ा है। इसीलिए मेरी रचना सरल होती है—मेरे लिए कठिन लिखना ही असम्भव है। मेरी मूर्खता ही मेरे कामकी सिद्ध हुई। अच्छा, भारतवर्षमें 'हरिद्वार' आदिके

भ्रमण-वृत्तान्तमें श्री 'हेमेन्द्रनाथ राय'का नाम था, वह क्या आप ही हैं? इस प्रश्नका उत्तर दें।

कभी-कभी समय मिलनेपर समाचार दिया करें। आपकी चिट्ठी कहाँ रख दी है, ढूँढनेपर भी नहीं मिली। यही कारण है कि कभीके पतेपर भेज रहा हूँ। शायद सारी बातोंका जवाब नहीं दे सका। शरीर बहुत कमजोर हो गया है। आज यहींतक बस—अगले पत्रमें दूसरी बातें लिखूँगा। मुझे बहुत-सी बातें कहनी हैं।

कभी और 'यमुना'को जरा देखा करें। आप अगर सचमुच ही देखते हैं तो मेरी चिन्ता आधी हो जायगी। यह मेरी आन्तरिक बात है—मन रखनेकी बात नहीं। मन रखनेकी बात कदाचित् ही करता हूँ।—आप लोगोंका अनुग्रहाकांक्षी—

श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

५

[श्री हरिदास चट्टोपाध्यायको लिखित]

रंगून, १५-११ १५

प्रियवर, 'श्रीकान्तकी भ्रमण-कहानी' सचमुच ही छापनेके योग्य है, ऐसा मैंने नहीं समझा था—अब भी नहीं समझता। पर सोचा था कहीं कोई छाप दे। विशेषकर उसके प्रारम्भमें ही जो श्लोक थे वे तब किसी दशामें आपकी पत्रिकामें स्थान नहीं पा सकते, पर सो जानी हुई ही बात है। पर दूसरी किसी पत्रिकामें शायद यह आपत्ति न उठे, इसीका भरोसा था। इसीलिए आपकी मार्फत भेजा। अगर कहें तो और लिखूँ। और बहुत-सी बातें कहनेको हैं, पर व्यक्तिगत। इसलिए यहींतक। व्यक्तिगत सारी बातें तब कही जायँगी।

मेरा नाम किसी भी हालतमें प्रकट न होने पाए। 'वह कौन?' हाँ, श्रीकान्तकी आत्मकथाके कुछ सम्बन्ध तो रहेगा ही, इसके अलावा वह भ्रमण-कहानी ही है, पर 'मैं' मैं नहीं हूँ। अमुकके साथ मिलाया है, अमुकके घर कर बैठा

है—पर सच नहीं है। रविबाबूने अपनी आत्मकथा लिखी थी, लेकिन अपनेको किस प्रकार सबसे पीछे रखनेकी सच्ची चेष्टा की थी। जो लिखना नहीं जानते, अर्थात् जिनकी रचनाओंकी परख नहीं हुई है, वे चाहे जितने बड़े आदमी क्यों न हों, अपने बगैर उनकी सभी रचनायें छापनेमें निरपराधकी सीमा नहीं। वे लोग समझते हैं कि सारी बातें कहनी ही चाहिए। जो कुछ होता है, समझते हैं सब-कुछ लोगोंको दिखाना-सुनाना चाहिए। जो कुछ देखते हैं, सुनते हैं, चित्र बनाना नहीं जानते वे किस तरहसे हाथमें तूलिका लेते ही सोचते हैं कि जो कुछ दिखाई पड़ रहा है सब-कुछ चित्रित कर डालें। लेकिन क्रमसे अनुभवसे अन्तमें समझ जाते हैं कि बात ऐसी नहीं है। बहुत-सी बड़ी चीजें छोड़ देनी पड़ती हैं, बहुत-कुछ बोलनेके लोभका संवरण करना पड़ता है तब चित्र बनता है। बोलने या अंकन करनेसे न बोलना या न अंकन करना अत्यन्त कठिन है। बहुत आत्मसंयम करना बहुत लोभका दमन करना पड़ता है तभी सचमुचमें बोलना और अंकन करना होता है।

बात यह तो आपको ही लेक्चर देने लगा! माफ करें—यह सब तो मेरी अपेक्षा आप ही खूब अच्छी तरह जानते हैं। जो कुछ भी हो श्रीकान्त पढ़कर लोग किस तरह छी-छी करते हैं इकट्ठा कर मुझे लिखें। तबतक श्रीकान्तकी एक भी पंक्ति नहीं लिखूँगा।

मैं फिर एक कहानी लिख रहा हूँ। अर्थात् समाप्त करनेके इरादेसे लिख रहा हूँ। अच्छी ही होगी। comedy होगी, tragedy नहीं। देखूँ कितनी जल्दी समाप्त होती है।

इस कहानीका भाव गोर्कीके लेखसे लिया गया है। अर्थात् अपने करनेके लिए 'अनुकरण' है पर पकड़ी नहीं जा सकती। सामाजिक पारिवारिक कहानी है। मेरे मनमें बड़ा उत्साह हुआ कि सुन्दर होगी। पर क्यासे क्या हो जायगा, कहा नहीं जा सकता।

रंगून ७-१२-१५

प्रियवर,— आशा है कि नई कहानी ठीक समयपर ही भेज सकूँगा। अगर नहीं भेज सका तो एक छोटी कहानी भेज दूँगा।

आपको असमाप्त कहानी नहीं भेज सकता और उसे समाप्त करनेकी आशामें छापनेके लिए भी नहीं कह सकता। पर चन्द्रकान्तकी कहानी खराब है। अगर क्षमा दें तो इस सम्बन्धमें एक बात कहूँ। सम्पादक महोदयगण कृपा कर इस कहानीका नितान्त शामिल न करें। मुझे आशा है कि कमसे कम जो रचनाएँ प्रकाशित होती हैं और हुई हैं, वह उनसे बहुत नीचे आसन पानेके योग्य नहीं है। अनेक सामाजिक इतिहास इसके भविष्यके गर्भमें प्रच्छन्न हैं। मेरी बहुतेरी पैदा और बचकी वस्तु कमसे कम मिर्ज़ोसे तो कुछ कद्र पानेके योग्य होगी ही। हाँ प्रारम्भ खराब है—पर यथार्थमें अच्छी चीजका प्रारम्भ खराब होता है ऐसा दिखाई भी तो पड़ता है। यही मेरी कैफियत है। क्या अबकी बार चलेगी? दादाकी चिट्ठीवालेको छपे अक्षरोंमें देखनेकी आशासे ही उसे भेजा है, यह बात भूमिकामें लिखी हुई है।

—आपका शरत्

५४।३६ वाँ स्ट्रीट, रंगून
२२ २ १६

बहुत दिनोंसे आपका पत्र नहीं मिला। आशा है सब ठीक है। भाई, मैं इस बार बुरी तरह गिरा हूँ। मुदूरसे प्रमथ भाईकी हवा क्यों कि क्या हुआ कुछ समय नहीं पा रहा हूँ। इस बार स्वास्थ्य और भी खराब है। सुनता हूँ यह बमाकी बीमारी है। देश नहीं छोड़नेसे यह भी नहीं छोड़ती। इस लिए दोनोंमें एक समर अनिवार्य हो रहा है। मैं कुछ नहीं जानता भगवान् ही जानते हैं। डर लगता है शायद जिन्दगीभरके लिए पंगु हो हो जाऊँगा। मानसिक चंचलताके कारण कुछ भी काम करनेकी इच्छा नहीं हुई—अबकी बार दादाको यह कहकर 'समाज धर्मका मूल्य' पढ़नेको दें। इसकी पेपर कॉपी मात्र तैयार कर सका था। बाकी हिस्सा पेपर कर बादमें भेज रहा हूँ। इसके बाद जो कुछ लिखनेका विचार किया है, वह दूसरे देशोंके सामाजिक नियमोंसे अपने देशके समाजकी एक तुलनात्मक आलोचनाके सिवा और कुछ भी नहीं है। इसलिए उधर किसी प्रकार व्यक्तिगत आलोचनाका

कर नहीं। नहीं जानता, इस निबन्धको 'भारतवर्ष'में छपनेकी उतनी प्राप्ति होगी या नहीं किन्तु अगर नहीं होती है तो आप वापिस भेज दें। मैं पूरा लिख कर एक पुस्तक तैयार कर लूँगा और भविष्यमें इसके माफिक बंध बाँधकर छपवानेकी चेष्टा करूँगा। सचमुच ही भाई, इस समाज-तत्त्वको लेकर बहुत दिन बिताए हैं। बहुत-सी बातें लिखनेके लिए चित्त छटपटाता है। लेकिन इन बातों को क्या मन मारने कैसे कहा जाय यह भी निश्चय नहीं कर पाता।"

अक्सर दादाको बहुत बातें बैठाईं थीं, लेकिन चाहती लिखना सम्पूर्ण रूपसे मानसिक स्थिरतापर निर्भर करता है। अगर मेरा स्नायु विरक्तताके लिए छूट गया है और इसे ठीक-ठीक बना पाऊँ, तो धीरे-धीरे इस महाग्रन्थको समाप्त कर सकूँगा। हो सकता है, तब इस पंगु होनेको भगवानका आशीर्वाद समझूँगा और निरालसके साथ भी कर सकूँगा। मैं इस उमरमें कैसे शरीरमें इस तरहकी कठिन बीमारी कभी सम्भव होगी, इसे कभी नहीं सोचा था; और अगर यही होता है तो शायद मनमें इसकी मुझे आवश्यकता थी। बचपनमें ईश्वरको बहुत प्यार किया है। बीचमें शायद सम्पूर्ण रूपसे भूल गया था। फिर अन्तिम कालमें अगर वही दर्शन देने आते हैं तो अच्छा ही है।—

[मार्च १९१९]

आपका पत्र मिला। लेकिन आजकल हाथोंमें केवल एक [illegible] जानेके कारण उत्तर देनेमें इतनी देर हुई।

मेरी बीमारीकी बात सुनकर आपने जो कुछ लिखा है, मैं शायद उसे कल्पना करनेकी भी हिम्मत नहीं कर सकता था। हृदयसे आशीर्वाद करता हूँ कि दीर्घजीवी और चिरसुखी हों। भगवान् आपको कोई विशेष दुःख न दें। मैं बीमार हूँ। यहाँ अच्छा होनेकी आशा नहीं। शरीरके और पैरोंको ठीक रखकर आखीरमें मुझे पंगु होनेसे ही बचा देते हैं तो वही अच्छा है। बीच-बीचमें सोचता हूँ कि शायद मेरे चलने-फिरनेकी शक्ति हो गई है, इसीलिए वे दोनों पैरोंको बन्द कर केवल हाथोंसे ही काम करनेको कहते हैं। लेकिन इसमें एक दोष यह है कि इतना करनेकी शक्ति भी मन्द होता जाता है। तो इसको किसी स्वास्थ्यके स्थानमें रहकर ठीक कर लेना होगा।

आपने मुझे जो कुछ देना चाहा है वही मेरे लिए यथेष्ट है। इस वर्षके अन्दर यदि नहीं आया, तो हो सकता है कि रुपये-पैसेका कर्ज अदा हो जाय। पर कृतज्ञताका ऋण तो अदा नहीं हो सकता। —मैं एक काठकी कुर्सी लेकर आऊँगा। जिस जगहका ठिकाना मिल सकेगा उसीसे चले आनेकी आन्तरिक इच्छा है। आप मुझे तीन सौ रुपये भेजें, तो मजेमें आ सकूँगा।

इस मनहूस स्थानको छोड़ देनेके बाद आपकी यह सारी अतिरिक्त आर्थिक क्षति अगर कुछ कम कर सकूँ तो इस एक जन्ममें इसीकी चेष्टा करूँगा।

मैं कुछ अच्छा हूँ। खून कुछ कम है। कविराजी तेल मालिश करके देख रहा हूँ, यह अच्छा है या बुरा। अभी पूर्णिमातक मालूम हो जायगा। मेरे करोड़ों आशीर्वाद हैं। इस प्रकारका आशीर्वाद शायद आपको बहुत कम लोगोंने दिया है। छुट्टीमें दफ्तरसे क्या मिलेगा, नहीं जानता। यहाँके सारे नियम-कानून बड़े साहबकी मर्जीपर हैं, जो कुछ भी मिल जाय। आप मुझे जो कुछ भी देंगे, वही मेरे लिए यथार्थमें यथेष्ट होगा।

[मार्च १ १९१]

कल आपके दिये तीन सौ रुपये मिले। ११ अप्रैलके पहले किसी भी हालतमें टिकट नहीं मिल रहा है।

१११, शिवालय, बनारस सिटी
७-५-२

परम कल्याणीय, आपका पत्र मिला। यहाँ बहुत गर्मी पड़ रही है। ऐसा हो गया है कि कामकाजके लिए जी नहीं लगता। काश्मीरवाले लोग नहीं माना। चैत्रका महीना है, आया नहीं जा सकता है। उन्हें एक व्रत पालन करना है।

कैसी बुरी आदत है कि एक भी पंक्ति नहीं लिखी जाती। पिछले चार-पाँच दिनोंसे लगातार कलम लेकर बैठता हूँ और दो घण्टे चुप बैठकर उठ जाता हूँ। ऐसा लगता है कि अब कभी लिख ही नहीं सकूँगा। जो कुछ था अब शायद समाप्त ही हो गया है, कौन जाने। एक बड़ी मजेदार बात है। यहाँ मधु-संचिका-

हैं एक नामी पण्डित हैं। वह मेरी जन्म-कुण्डली विचार कर हैरान थे और
मैं भी हैरान रह गया। मेरे अतीत-जीवनको (जिसे आज भी कोई नहीं जानता)
'अक्षरशः' इस तरह बतलाने लगे कि अचम्भेसे सिर नीचा हो गया। और भविष्यका
जीवन तो और भी भीषण। वे बारम्बार कहने लगे कि यह किसी महायोगी और
नहीं तो राजतुल्य किसी व्यक्तिकी कुण्डली है। हाँ मैंने अपना परिचय गुप्त ही
रखा था। इस आदमीकी बड़ी ख्याति है आमदनी भी काफी है। बाकी लोग
बैठे थे और पण्डितजी मेरी कुण्डली देखने लगे। पारिश्रमिक तो लिया ही नहीं
बारम्बार पूछने लगे कि ये कौन हैं और कहाँ रहते हैं। धर्मस्थानमें ग्रहस्थितिका
इतना पूर्ण सम्मान करते हैं उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था। अच्छा भाई,
अगर यह सच है तो मेरे जैसे नास्तिकके भाग्यमें यह कैसी विडम्बना है यह कैसा
परिहास है, बताइये तो! आयु किन्तु ४८ या अधिकसे अधिक ५१। उन्होंने
सम्भवके अतिरेकमें मृत्यु नहीं बताई, उच्चारण ही नहीं कर सके। कहने ल
कि इनका अगर ४८ में मोक्ष नहीं होता है तो उसके बाद संसार त्याग करके ५१
में शरीर त्याग करेंगे। पर बड़ी बात यह है कि यह सच नहीं होगा, इसे मैं
भली भाँति जानता हूँ। लेकिन अतीतको इस तरह 'अक्षरशः' सच कैसे बता सके,
मैं तभीसे लगातार इस बातको सोच रहा हूँ। क्या जानूँ सोचते-सोचते बुढ़ापेमें
फिर न कहीं ऊँटोंमें जा मिलूँ।

अबसे मेरा आप लोग 'सम्मान' करते रहें।

—शरत्‌दा

अवश्य ही ऐसा 'कोई' नहीं
हूँ कि शाप देकर भस्म कर दूँ। यहाँ एक और नामी गणक हैं—सुधीर भादुड़ी।
उन्होंने गिनकर बतलाया कि मैं एक असंख्य धार्मिक आदमी हूँ। इस समयका
अधिकार उन्होंने भी किया। देखता हूँ मुझे वे आकर उसी बातमें मिला रहे
हैं।—('सेवा' माघ आश्विन १९५२)

सामताबेड़, पानित्रास, हावड़ा
७ आषाढ़, ११४

कल्याणीय, गत बुधवारको मुझे ज्वर आया। आज आठ दिनोंके बाद
भी नहीं उतरा, आपने पत्रमें अभिनयका अधिकार माँगा था। अतएव मैं

अर्पण देनेके लिए रखा हुआ था। लेकिन भाग्यमें विधिकी विडम्बना आई, नहीं तो 'विजया' नाटकको अबतक समाप्त कर डालता।

आप उसे दूसरेसे लिखाना चाहते हैं। लेकिन क्या वह मुझसे जल्दी कर सकेगा? उसके लिए देखता हूँ अनेक असुविधाएँ हैं। बीचमें लेखकके स्वयं न रहनेसे वे सब स्थान पूर्ण कर देना कठिन ही समझता हूँ और अभिनयकी दृष्टिसे भी वह बहुत अच्छा होगा इसकी भी आशा नहीं रखता। मेरा अपना लिखा होनेसे यह बाधा नहीं रहती; और मैं भी एक नाटक 'विजया' नामसे प्रकाशित कर सकूँगा; दूसरेका लिखा होनेसे वो नहीं कर सकूँगा। सिनेमाके मामलेमें तो मेरी कोई गरज ही नहीं है।

प्रथम अंक प्रबोध गुह देखने ले गये, सो दिया ही नहीं। कापी जो थी उसे अभिनयोपयोगी करके लिखना आरम्भ किया था कि इसी समय विघ्न आ पड़ा।

पर आप लोगोंको विलम्ब होनेसे—(अर्थात् 'विजया'की आशामें)—बहुत क्षति होगी। व्यर्थ ही अभिनेताओंको वेतन देना पड़ रहा है। इस हालतमें क्या करूँ, समझमें नहीं आता है। पर एक तरहसे पूरी पुस्तक तैयार है। केवल थोड़ा-बहुत रदोबदल और थोड़ा-सा लिख कर कापी करवाना है। अगर इस बीच मैं अच्छा हो गया तो अवश्य ही कर डालूँगा। कुछ दिन पहले आपने यह तैयार किया होता तो कोई बात ही नहीं थी।

पुनश्च। देखनेके लिए पहले हिस्सेको मुकुलके हाथ भेज रहा हूँ। इसे देखकर अगर समझें कि बाकी हिस्सेका आप लिखा सकेंगे तो मुझे बताना।—

६

[मणिलाल गंगोपाध्यायको लिखित]

रंगून, ७-१-१४

प्रिय मणिबाबू, बहुत दिन हो गये आपकी चिट्ठीका जवाब नहीं दिया है। इस त्रुटिके लिए खुद हो लज्जित हूँ, इसपर आप और कुछ न सोचें।

अपनी रचनाकी आलोचना सुनकर आप दुःखित नहीं हुए हैं इस बातक आपकी जबानी सुनकर चैनकी साँस ली। कभी-कभी सोचा करता था कि मेरा तो यही पाण्डित्य है कि दूसरोंके दोषोंको दिखाऊँ। लेकिन उन्होंने क्या सोचा होगा। छोड़िए इन बातोंको—बहुत खुशी हुआ हूँ।

इसके बाद भी मैंने आपकी पुस्तक फिर एक बार शुरूसे आखिरतक पढ़ी थी, सचमुच ही बहुत अच्छी लगी है—इस बार मानो कुछ अधिक समझ सका हूँ कि यह रचना क्यों दूसरोंको मेरी तरह अच्छी नहीं लगती है। यथार्थ ही आपकी रचनाका tone कवि जैसा है। निराकार (abstract) भावको कवित्व जिन्हें अच्छी नहीं लगती है उन्हींको आपकी रचना अच्छी नहीं लगती है इस बातको निश्चित रूपसे कह सकता हूँ।

जिन कविताओं या छोटी कहानियोंमें अनेक तथ्य हैं, घटनाएँ हैं मगर केवल कुछ सीधे-सादे सांसारिक हैं मैंने देखा है अधिकतर लोगोंको वही अच्छी लगती हैं क्योंकि उन्हें वे अच्छी तरह समझते हैं उन्हें समझाना भी आसान है। यहाँ और एक बात कहूँ। बहुत दिन पहले बसुमती पत्रिकामें आपकी 'बिन्दु'की आलोचना करते हुए लिखा था—"हिन्दू विधवाका रातमें औरके घर जाना क्या रुचि इत्यादि इत्यादि।" (मेरे एक मित्रने इस आलोचनाकी बात मुझे सूचित की—मैंने खुद उसकी छपावली नहीं देखी है।) इस बातको जानकर एक बार मुझे ऐसा लगा कि इस आदमीकी हिमाकतकी तरह मैं भी एक घोर प्रतिवाद किसी पत्रिकामें छपा दूँ—मुझे लगा कि कहूँ और काफी कड़े शब्दोंमें कहूँ—'लेखककी रुचि बहुत अच्छी है सिर्फ तुम ही अनुदार और बेवकूफ हो इसीलिए तुम्हें इसमें दोष दिखाई पड़ा।' बिन्दुने कौन-सा अपराध किया यह मेरी समझमें किसी भी तरह नहीं आया। वह बेचारी एक और निष्पाप अभागे साथीको रातमें छिपकर देखने गई थी अगर जरूरत हुई तो मुँहमें एक बूँद पानी देने या इसी तरहका कोई काम करनेके लिए—बस यही न। इतनेहीसे महाभारत अशुद्ध हो गया। हो सकता है कि मन ही मन कुछ स्नेह भी करती हो—क्योंकि वह उसका खेलका साथी था। क्या यह दोषकी या रुचिविरुद्ध बात है? कारण यह लिखना है—अर्थात् हिन्दू विधवाके सामने अगर कोई मर जाता है, और अगर उसकी उँगलीसे छूनेसे भी वह जिन्दा हो सकता है, तो

हिन्दू विधवाको यह भी नहीं करना चाहिए। क्योंकि वह विधवा है और जो आदमी मर रहा है वह सत्पुरुष है। यही इनकी हिन्दू विधवाका आदर्श है!

लगता है कि लोग इतना संकीर्ण मन लेकर दूसरोंका दोष दिखानेकी हिमाकत करते हैं और दिखाते हैं और लोग उस आलोचनाको पढ़कर कहते हैं 'बात तो ठीक है। ठीक ही तो लिखा है!'"

मैं ठीक-ठीक यह नहीं समझ सकता कि आलोचना कैसी थी। अपने मित्रसे जैसा सुना वैसा ही लिखा है। आपने शायद वह आलोचना देखी होगी।

कुछ पाठक यह भी समझते हैं कि जहाँ-तहाँ जप-तप संन्यासी और हिन्दू धर्मकी बड़ी-बड़ी बातोंके न होनेसे कहानी या उपन्यास किसी भी न्यायमें अच्छा नहीं हो सकता।

यदि आप लिख दें कि किसी विधवाका प्यार हुआ—तो फिर आप जायँगे कहाँ—मारो-मारो करकर सब दौड़ पड़ेंगे। और ये लोग बिल्कुल दूसरे गालियाँ देनेमें विशेष पटु होते हैं यही इनका बल है—अर्थात् ये चीत्कार करके और शारीरिक बलसे जीतनेकी चेष्टा करते हैं और जीत भी जाते हैं।

दिन-ब-दिन हमारा साहित्य मानों बिल्कुल एक ही साँचेमें ढला-सा होता जा रहा है—प्रतिदिन संकीर्णसे संकीर्णतर हो रहा है, (इसीलिए कभी-कभी मुझे लगता है कि उच्छृंखल रचनाएँ शुरू कर दूँ केवल गुस्सेमें आकर जैसा-तैसा लिखने लगूँ।) मैंने कुछ दिन पहिले अपनी दीदीके नामसे 'नारीका मूल्य' शीर्षक एक निबन्ध लिखा। दीदीने, चिट्ठीमें मुझे लिख भेजा और उसीको मैंने बढ़ाकर लिख दिया। इसके लिए समालोचकों और मित्रोंने मुझपर कितना क्रोध प्रकट किया यह नहीं कहा जा सकता। किसी-किसीने ऐसा भी कहा है कि मैं म्लेच्छ-भावापन्न हूँ—ठीक-ठीक हिन्दू नहीं हूँ। हिन्दू धर्मपर मैंने कभी भी कटाक्ष नहीं किया, केवल इसकी अनुदारतापर आक्रमण किया है। कितने ही लोगोंने आलोचना (भयानक प्रतिवाद) करनेका डर दिखाया, पर आजतक किसीने कुछ भी नहीं किया। उसी समय मेरे एक मामाने लिखा कि मैं दिलसे तो ब्राह्म हूँ और बाहरसे हिन्दू। यद्यपि मेरे गलेमें तुलसीकी माला है, सन्ध्या किये बगैर मैं जल ग्रहण नहीं करता, जिसके-तिसके हाथसे पानीतक नहीं पीता। (बुरा न मानें मणि बाबू, आपसे ये बातें कहना अन्याय है।) मैं जो कुछ हूँ

नहीं आपको लिखा। इन सब बातोंके होते हुए भी उन्होंने मुझे कितनी गालियाँ दीं और मैं बाहरसे ढोंग रचता हूँ, यह कहकर समझाया, इसे कहाँतक लिखूँ। इसके बाद ही बीमार हो गया, नहीं तो इच्छा थी कि इसी तरहके 'देवताओंका मूल्य' और 'हिन्दू शास्त्रोंका मूल्य' शीर्षक निबन्ध लिखना शुरू करूँगा। छोड़िए, अपनी ही बातोंसे चिट्ठी भर दी—कैसे हैं? तबीयत ठीक हुई क्या? नया कुछ लिखा? हाँ, अच्छी बात है, जो कुछ भी लिखें अन्तमें अधीर (impatient) होकर समाप्त न करें। शायद यही आप गलती करते हैं।—

आपका श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

एक अनुरोध, इस चिट्ठीमें जो कुछ भी क्यों न लिखा हो बुरा न मानें—अगर कोई गैर वाजिब बात भी लिखी हो तो भी।

पुनश्च—आपकी भाषाकी एकाध छोटी-मोटी त्रुटियोंको लेकर लोगोंको शोर-गुल मचाते देखता हूँ। हाँ मैं खुद आपको (उन त्रुटियोंको) तय नहीं लिखता। लेकिन दोष भी नहीं देखता। आप जान-बूझकर ही वैसी भाषा और हिज्जे लिख रहे हैं—अच्छा ही कर रहे हैं। जिस बातको अच्छा समझते हैं उसे केवल दूसरोंके कहनेसे न छोड़ें। पर अगर खुद देखते हैं कि उन्हें बदलना आवश्यक है, तो बदलें।

७

[श्री सुधीरचन्द्र सरकारको लिखित]

प्रिय सुधीर,—कल रातमें तुम्हारा पत्र मिला। जो विलम्ब हो रहा है और इससे जो क्षति हो रही है, उसे क्या मैं नहीं जानता? पर प्रायः अधिकांश नये सिरेसे लिखना पड़ रहा है। अगर दो-एक महीने देर होती है, तो वह अधिक अच्छा है, पर इस तरहसे शुरू होकर भद्दे ढंगसे खत्म हो, इसीका मुझे डर है।

पर अब छपना बन्द नहीं होगा। अगली डाकसे इतना भेज दूँगा जो शायद अधिक होगा। एक बात और। फिरसे लिखनेमें बहुधा डर लगता है। कहीं पहले जो एक बार कहा है उसे फिर न कह दूँ। जितना छपा है उसकी

बहुत-सी कापियाँ मुझे नहीं मिली हैं। जितना छपा है उसे अगर रजिस्ट्री करके भेज दें तो मेरा थोड़ा परिश्रम कम हो जाए। अवश्य ही इसको भेज दें। जल्दबाजी करनेसे तो सब-कुछ स्फुट दिनमें हो सकता है। लेकिन ऐसा करना क्या अच्छा होगा? पर और जितना भी विलम्ब हो, माघ महीनेके अन्ततक अधिकांश छपाई समाप्त हो ही जाएगी। मेरे हाथोंकी हालत ठीक वैसी ही है। शायद अब अच्छे नहीं होंगे। फाल्गुनमें आनेकी इच्छा है। मेरा स्नेहाशीर्वाद लो। इति—(आनन्द बाजार पत्रिका, ८ माघ, १३४४)।

[१४ माघ १९११]

शायद सुना होगा मैं क्रमशः पंगु हो गया। कहा जा सकता है चल-फिर नहीं पाता, पर लिखने-पढ़नेका काम पहले जैसा ही कर सकता हूँ। लेकिन मन इतना विमर्ष है कि किसी काममें हाथ लगानेकी इच्छा नहीं होती—लगाने पर भी वह अच्छा नहीं होता। केवल जो पहले लिखे हुए थे—यथा आगम-विदाई-चौथाई, इस तरहकी मेरी बहुत-सी रचनाएँ हैं—उन्हींको किसी तरह जोड़-तोड़कर खड़ा कर देता हूँ। 'चरित्रहीन'के बारेमें ऐसा नहीं नहीं करना चाहता इसीलिए इतने दिनोंतक दो-दो अध्याय भेज रहा था। नहीं तो जब तुम मेरे पास बैठकर ठीक कर लेना। मैं आयुर्वेदिक चिकित्साके लिए कलकत्ता आ रहा हूँ—एक वर्ष रहूँगा। ११ अप्रैलको रवाना होऊँगा, क्योंकि इससे पहले किसी तरह टिकट नहीं मिल सका। आजकल सप्ताहमें एक, कभी-कभी डेढ़ सप्ताहमें एक जहाज छूटता है। अच्छी बात है। आनेकी इच्छा होती है तो आना, लेकिन क्या टिकट मिलेगा? (आनन्द बाजार पत्रिका, ८ माघ, १३४४)

५४।३६ वीं स्ट्रीट, रंगून
१०-१-१३

परम कल्याणीय। मैं वृद्ध हूँ इसलिए आपको आशीर्वाद देता हूँ। मुझसे परिचय न होनेपर भी आपने मुझे पत्र लिखा इसे परम सौभाग्य न समझकर धृष्टता समझूँगा, मैं इतने ऊँचे मनका नहीं।

लिए अत्यन्त खाना पड़ रहा है। यह पत्र जब आपके हाथोंमें पहुँचेगा तब मैं इस पतेपर नहीं रहूँगा। अगर कृपा कर कभी इस पत्रका उत्तर दें तो जिस तरह मौजूदा पतेसे अवगत हुए थे उसी तरह जान सकेंगे। यद्यपि समझ रहा हूँ कि इसकी आवश्यकता शायद अब आपको नहीं होगी।

लेकिन इस बातको रहने दूँ। मेरी रचना आपको अच्छी लगी है, यही मेरे परिश्रमका पुरस्कार है। आपने इस बातको सूचित कर मुझे सुखी किया है, इसलिए हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। आशीर्वाद देता हूँ आप भी इसी तरह सुखी रहें।

भगवान्‌से आपकी कुशलताके लिए प्रार्थना करता हूँ।

आशीर्वादक—श्री शरत्‌चन्द्र चट्टोपाध्याय

९

[प्रमथ चौधरीको लिखित]

१ नीलकमल कुँडू लेन, बाजे–शिवपुर
२५–६–१६

सविनय निवेदन। किसी भी कारणसे आपकी चिट्ठी मिल सकती है, इसकी आशा मैंने कभी नहीं की थी। आज सहसा ही एक चिट्ठी मिली।

करीब पाँच महीने हो गये मैं इस देशमें आया हूँ। आनेके ही वक्तसे आपसे मिलनेकी चेष्टा की है, लेकिन मिलना आजतक सम्भव नहीं हुआ। किस रास्तेसे आपके घर पहुँचा जा सकता है, यह नहीं जानता। इसके अलावा संकोच भी था—कहीं बेमौके पहुँचकर आपका समय न नष्ट करूँ। अब जब आपने खुद ही बुलाया है तो अवश्य ही आऊँगा। देखूँ, कल बुधवारको अगर आपके दफ्तरमें हाजिर हो सकूँ। नहीं तो शनिवारको आपके बालीगंजवाले मकानपर आऊँगा। मेरी मुलाकातका एक विशेष कारण यह है कि आपकी रचनाओंका मैं भी एक भक्त हूँ। कमसे कम अधिक पक्षपाती हूँ। इसीलिए जब बाहरके लोग आपकी निन्दा करते हैं तो मुझे भी लगता है। दोनों पक्षोंकी रचनाओंको

मैं ध्यानसे पढ़ता हूँ। मेरे लिए कठिनाई यह है कि उनके श्लेषके कारण नहीं समझ पाता, और आप भी क्या समझाते हैं यह भी मेरी समझमें नहीं आता। यह सब बहुत सम्भव ही उच्च कोटिकी होती है, इसमें मुझे सन्देह नहीं। पर जिस रूपमें वह प्रकाशित होती है उसे नहीं समझ पाता। मेरी अक्ल मोटी है इसीलिए किसी भी बातको मैं ठोस रूपमें ही समझना चाहता हूँ। आपको लिखनेका कारण यही है। सोचा है साक्षात्कार करनेपर सारी चीजोंको विशेष रूपसे समझ लूँगा। श्रीयुत् ब्रजेश्वर पण्डित महाशयसे एक दिन यही प्रश्न किया था। उन्होंने समझा भी दिया था। अपने मणिलालसे भी पूछा था। उन्होंने भी समझा दिया था। अब आपकी बारी है।

श्रीयुत् क्षीरोद बाबू (नाट्यकार) ने एक दिन मुझसे कहा था कि मैं बंगला साहित्यका एक रत्न हूँ। इसका कारण यह है कि मैं जिस भाषामें लिखता हूँ वही ठीक है। लेकिन 'सबुज पत्र'में उन्होंने भाषाकी मिट्टी पलीद कर दी है। उनकी भाषा भाषा ही नहीं है।

मैं स्वयं इस बातका आविष्कार नहीं कर सका कि मेरी भाषा और 'सबुज पत्र' की भाषामें पार्थक्य कहाँ है। इसीको आपसे अच्छी तरह समझ लूँगा। मेरी कोई रचना आपने पढ़ी है या नहीं पता नहीं। यदि पढ़ी है तो कोई असुविधा नहीं होगी।

पंडित महाशयने उस दिन कहा था कि बंगला भाषा संस्कृतनिष्ठ होनी चाहिये, और इसीको लेकर झगड़ा है। संस्कृतके प्रति निष्ठा कहाँतक होनी चाहिये, इसे वे स्वयं नहीं जानते और आप लोग भी नहीं जानते। देखूँ, इसका फैसला आपके पास जाकर होता है या नहीं।

—श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

५, नीलकमल कुंडू लेन,
बाजे-शिवपुर, ११-६-५२

सविनय निवेदन

कल आपने मुझे एक पुस्तक दी थी। पुस्तकका पढ़ना मेरे लिए एक आफत बन गई है और इससे अब यह एक बुरी आदततक आ पहुँची है। उस पुस्तकको

लिए अन्यत्र जाना पड़ रहा है। यह पत्र जब आपके हाथोंमें पहुँचेगा तब मैं इस पतेपर नहीं रहूँगा। अगर कृपा कर कभी इस पत्रका उत्तर दें तो जिस तरह मौजूदा पतेसे अवगत हुए थे उसी तरह जान सकेंगे। यद्यपि समझ रहा हूँ कि इसकी आवश्यकता शायद अब आपको नहीं होगी।

लेकिन इस बातको रहने दूँ। मेरी रचना आपको अच्छी लगी है, यही मेरे परिश्रमका पुरस्कार है। आपने इस बातको सूचित कर मुझे सुखी किया है इसलिए हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। आशीर्वाद देता हूँ आप भी इसी तरह सुखी हों।

भगवान्से आपकी कुशलताके लिए प्रार्थना करता हूँ।

आशीर्वादक—श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

९

[प्रमथ चौधरीको लिखित]

१ नीलकमल कुँडू लेन बाजे-शिवपुर
११-४-१६

सविनय निवेदन। किसी भी कारणसे आपकी चिट्ठी मिल सकती है, इसकी आशा मैंने कभी नहीं की थी। आज मंटूकी भी एक चिट्ठी मिली।

करीब पाँच महीने हो चले मैं इस देशमें आया हूँ। आनेके ही बादसे आपसे मिलनेकी चेष्टा की है, लेकिन मिलना अबतक सम्भव नहीं हुआ। किस रास्ते जानेसे आपके घर पहुँचा जा सकता है यह नहीं जानता। इसके अलावा संकोच भी था—कहीं बेमौके पहुँचकर आपका समय न नष्ट करूँ। अब जब आपने खुद ही पूछा है तो अवश्य ही आऊँगा। देखूँ, कल बुधवारको अगर आपके दफ्तरमें हाजिर हो सकूँ। नहीं तो शनिवारको आपके बालीगंजवाले मकानपर आऊँगा। मेरी मुलाकातका एक विशेष कारण यह है कि आपकी रचनाओंका मैं भी एक भक्त हूँ। कमसे कम अधिक पक्षपाती हूँ। इसीलिए जब बाहरके लोग आपकी निन्दा करते हैं तो मुझे भी लगता है। दोनों पक्षोंकी रचनाओंको

मैं ध्यानसे पढ़ता हूँ। मेरे लिए कठिनाई यह है कि उनके श्लोकके कारण नहीं समझ पाता, और आप भी क्या समझाते हैं यह भी मेरी समझमें नहीं आता। यह सब बातें अवश्य ही उच्च कोटिकी होती हैं, इसमें मुझे सन्देह नहीं। पर जिस रूपमें वह प्रकाशित होती है उसे नहीं समझ पाता। मेरी अक्ल मोटी है, इसीलिए किसी भी बातको मैं ठोस रूपमें ही समझना चाहता हूँ। आपसे मिलनेका कारण यही है। सोचा है साक्षात्कार करनेपर सारी चीजोंको विशेष रूपसे समझ लूँगा। श्रीयुत् शास्त्रेश्वर पण्डित महाशयसे एक दिन यही प्रश्न किया था। उन्होंने समझा भी दिया था। अपने मौसाजीसे भी पूछा था। उन्होंने भी समझा दिया था। अब आपकी बारी है।

श्रीयुत् क्षीरोद बाबू (नाट्यकार) ने एक दिन मुझसे कहा था कि मैं बंगला साहित्यका एक रत्न हूँ। इसका कारण यह है कि मैं जिस भाषामें लिखता हूँ वही ठीक है। लेकिन 'सबुज पत्र'में उन्होंने भाषाकी मिट्टी पलीद कर दी है। उनकी भाषा भाषा ही नहीं है।

मैं स्वयं इस बातका आविष्कार नहीं कर सका कि मेरी भाषा और 'सबुज पत्र' की भाषामें पार्थक्य कहाँ है। इसीको आपसे अच्छी तरह समझ लूँगा। मेरी कोई रचना आपने पढ़ी है या नहीं पता नहीं। यदि पढ़ी है तो कोई असुविधा नहीं होगी।

पण्डित महाशयने उस दिन कहा था कि बंगला भाषा संस्कृतनिष्ठ होनी चाहिये, और इसीको लेकर झगड़ा है। संस्कृतके प्रति निष्ठा वास्तविक होनी चाहिये, इसे वे स्वयं नहीं जानते और आप लोग भी नहीं जानते। देखूँ, इसका फैसला आपके पास आकर होता है या नहीं।

—श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

५, नीलकमल कुंडू लेन,
बाजे-शिवपुर, ११-६-१२

सविनय निवेदन

कल आपने मुझे एक पुस्तक दी थी। पुस्तकका पढ़ना मेरे लिए एक आदत बन गई है और इससे अब वह एक बुरी आदततक आ पहुँची है। उस पुस्तकको

पढ़ें या न पढ़ें, पर प्राप्ति-स्वीकार करना एक भद्रता है, यह भी मानों याद नहीं रहता। इस बातमें दम्भकी ध्वनि निकलनेपर भी यह सत्य है। इसलिए आपकी पुस्तकके बहुत दिनोंके बाद प्राप्ति-स्वीकारकी बात लिख ही तो आपको धन्यवाद दिये-बिना नहीं रहा जा सका। एक बार इसके लिए भी धन्यवाद और दूसरी बार धन्यवाद पत्रके अन्तमें दूँगा।

कल ही रातको पुस्तक समाप्त की। कहना नहीं होगा कि कहानियाँ पढ़नेमें बहुत दिनोंसे ऐसा आनन्द नहीं मिला था। इसकी विशेष प्रशंसा करने का अर्थ है इसकी समालोचना करना। इसे करनेके लिए बहुतेरे आपको दिन रात धमकियाँ दिया करते हैं, इसका संकेत भी कल आपके घरमें सुन आया। अतएव यह काम मैं नहीं करूँगा। और वे लोग भी क्या करेंगे,—शिव बनायेंगे या बन्दर—यही जानते हैं। उन्हें अच्छी लगती है—यह एक बात है। लेकिन इस रचनामें कितनी प्रौढ़ता है कितनी सूक्ष्म कारीगरी है, इसका निखी सौन्दर्य कहाँ है मधुर काव्य-रस कहाँ है, सबसे अधिक इसे लिख सकना कितना कठिन है, यह वे ही लोग समझेंगे जिन्हें अपने हाथोंसे लिखनेका रोग है। और कहना नहीं होगा कि इस प्रकारकी कुछक रचनाको पढ़नेका रोग देशके कुछ लोगोंमें है। पर इसे छोड़िये। वास्तविक बात यह है कि रवि बाबूकी रचना पढ़नेपर मुझ ऐसा लगा था कि चेष्टा करनेपर भी मैं ऐसा नहीं लिख सकता। और कल आपकी कहानियोंकी पुस्तक पढ़नेपर भी मुझे लगा कि चेष्टा करनेपर भी मैं इस तरहसे नहीं लिख सकता। इसी बातको सूचित करनेके लिए यह पत्र लिख रहा हूँ।

कल शामको अचानक आपके यहाँसे निकल कर 'भारतवर्ष' कार्यालयमें आया और वहीं 'सोमनाथकी कहानी' समाप्त करनेपर जलधरबाबू आदि कई व्यक्तियोंसे उसको लेकर बहस चल पड़ी। मैंने अपना मत दिया कि यह रचना उन्हें अवश्य पढ़नी चाहिये, जो अधिकांशमें स्वयं पुस्तक लिखते हैं। इसकी निपुण रचनाशैली सहज-सरल कथोपकथन, रसका ऐसा परिपाक, मनोभावोंकी अभिव्यक्तिका ऐसा अनाविल मुक्त-पथ वे लोग जितना समझ और सील सकेंगे, जो लेखक हैं उतना साधारण लोग नहीं। साधारण लोगोंको तो केवल अच्छी ही लगेगी पर ग्रन्थकारोंको तो अच्छी भी लगेगी और उपयोगी भी होगी।

यहाँ आपसे एक अनुरोध करूँगा कि कृपया आप यह न सोचें कि इस उद्धृत प्रशंसामें रंचमात्र भी अत्युक्ति है—इसे स्वयं बिना खुशामद करते हैं। क्योंकि मैं जानता हूँ कि इसी बीच कितनी प्रशंसा आपको 'मारवाड़ी' के सम्बन्धमें मिली है उसमें उपर्युक्त खुशामद भी है यह आपने स्वयं अनुभव किया होगा। कमसे कम मैं होता तो यही अनुभव करता। क्योंकि मैं इस बातको निश्चित रूपसे समझता हूँ कि यह पुस्तक साधारण पाठकोंके लिए नहीं है। साधारण लोग इसे समझेंगे ही नहीं।[1]

अंग्रेजीमें एक बात है 'आर्ट टु हाइड आर्ट' अर्थात् कला छिपानेके लिए कला। इसे न समझ पानेके कारण वे मान बैठते हैं कि इस मँजे हुए सौन्दर्यमें सौन्दर्य ही नहीं है। मारवाड़ी लोग मकान बनवाते हैं और पैसा खर्च करके उसमें कारुकार्य करवा लेते हैं।

पाठकोंकी बुद्धि और संस्कृति (Intelligence and Culture) जबतक एक सीमातक नहीं पहुँच जाती है, तबतक वे इस पुस्तकको समझ ही नहीं पाते। इस बातको मैं बनाकर नहीं कह रहा हूँ। मगर फिर कभी मुलाकात हुई तो इसपर बातें होंगी। आपको हमारी धन्यवाद देकर आज विदा होता हूँ। ऐसा भी हो सकता है कि मुझे अच्छी लगनेकी आपके निकट कुछ भी कीमत नहीं हो।

—श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

---

१ एक दिन इस पुस्तकके सम्बन्धमें एक व्यक्तिने कहा था कि आप इसी तरहकी सभी कविताओंका अर्थ समझा दे सकते हैं? मैंने कहा कि नहीं, नहीं समझा सकता। इसका कारण यह है कि मन वेदान्तके भी पण्डित होनेपर भी काव्य समझनेमें पण्डित नहीं है। इसके अलावा सभी कविताओंके अर्थ सभीको समझाना ही चाहिये इस तरहकी कोई शपथ नहीं लिखते थे। रवि बाबूकी 'मेघ विहार' को पढ़कर सुरेश बाबूने कहा था कि ऐसी अर्थहीन कविता क्यों? पढ़ने कभी नहीं देखी। अतएव यह बात भर सुरेश बाबूके मुँहसे निकली है, इसीलिए आज कैसा होगा और न माननेसे जीवन बरबाद होगा, ऐसा नहीं है।

—शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय ४१।११

२-१०-१९
शिबपुर

आज अभी-अभी आपका पत्र मिला। उस दिन आपको जो पत्र लिखा था—परन्तु भेजा नहीं था—पीछे अचानक आप कुछ समझ बैठें—इसीलिए आज उसे भेज दिया है। किसी दिन कोठीपर आऊँगा।

---

६ नीलकमल कुण्डु लेन
बाजे-शिबपुर, हवड़ा
११-१ -१९१९

सविनय निवेदन। कई दिन हुए आपका पत्र पाकर जवाब देनेमें विलम्बके कारण लज्जित हूँ। जाना भी नहीं हो सका इसके लिए अपने ही मनमें क्लेशका अनुभव कर रहा हूँ। परसों अथवा बृहस्पतिवारको अगर आप घरपर रहें तो शामको आऊँगा। लेकिन न जाने क्यों मेरा ऐसा स्वभाव है कि बड़े आदमीके घर जानेकी बात याद आते ही चित्त हिचाते संकोचसे खिन्न हो जाता है। इसीलिए जाते जाते भी जाना नहीं होता है।

इस सप्ताहमें अगर उठ सका तो परसों निश्चय ही आपके यहाँ हाजिर होऊँगा। और अगर नहीं हो सका, तो कारण आपको बतलाना नहीं पड़ेगा। लेकिन जाने दीजिये इस बातको।

आपकी इस पुस्तककी जिन्होंने आलोचना लिखी थी वे अति उच्छ्वासके दोषके कारण ही पत्रिकावालोंको पसन्द नहीं कर सके शायद बात ऐसी नहीं। आपको तो मालूम है कि हमारी पत्रिकाओंमें 'नामका भार' न रहे तो कोई सम्पादक बारको (बुद्धिकी दीनतावश) जाँच नहीं करेगा। मेरी आलोचना, अवश्य ही अच्छी नहीं होती क्योंकि इस विषयमें मेरी शक्ति बहुत कम है। पर मेरे नाम लिख देनेसे किसी भी पत्रिकामें उसे स्थान मिल जायगा। इसलिए अगले महीनेमें आलोचना करूँ, या न करूँ, सोच रहा हूँ। या तो 'भारतवर्ष' में नहीं तो 'प्रवासी' में। पर आपकी तुलिकासे पीतवर्ण चेहरा कहीं भारतवर्षके भारतीय आर्यके उत्कृष्ट नमूने जैसा न लगे, इसीका मुझे डर है। और आपके

लिए तो बात ही नहीं—आह्लादको रसस्नेह ठौर ही नहीं रहेगा। पर अभय दें तो कहूँ।

आपकी 'बड़ो बाबूर बड़ो दिन' (बड़े बाबूका बड़ा दिन) में मौजूद पोंगापंथी बाबू जिसे 'मुग्धपाना' कहते हैं उसकी यद्यपि कोई कमी नहीं है (न गढ़नेकी ही बात है।) पर वह मुझे अच्छा नहीं लगा। मैं जानता हूँ कि इस विषयमें आपके दूसरे कद्रदानों और मेरे मतभेदको आप स्पष्ट ही अनुभव कर रहे हैं। हो सकता है कि उन्होंने आपसे कहा हो कि किसी पात्रको बन्दर बना देनेकी आपकी क्षमता असाधारण है। मैं भी यह नहीं कहता ऐसी बात नहीं। विद्रूप व्यंगके वाणोंसे मनुष्यकी किसी विशेष बन्दर जैसी प्रवृत्तिको पाठकोंके सामने खिसकी उघाड़नेमें आप पारंगत हैं। लेकिन मैं देखता हूँ कि मनुष्योंको मनुष्यके रूपमें दिखानेकी क्षमता आपमें इससे कहीं अधिक है। कोई अत्यन्त गम्भीर स्वभावके लोग जैसे अपने दुःखको भी कहनेके समय एक ऐसे तान्त्रिकस्पका पुट दे देते हैं कि अचानक लगता है कि वह किसी औरके दुःखकी कहानी कह रहे हैं। मानों इससे उनका कोई सम्बन्ध ही नहीं है। आप भी ठीक उसी तरह करते हैं। घुमा-फिराकर कातरोक्ति कहीं भी नहीं है—पर जीवनकी न जाने कितनी बड़ी ट्रेजेडी पाठकोंके हृदयपर वार करती है। आपकी रचनाकी यह तरह शान्त बैठे हुए छिपानेकी महिमा ही मुझे सबसे अधिक मुग्ध करती है। इसीलिए उस दिन लिखा था कि 'पारसाटी' कहानियोंका ठीक समझनेके लिए पाठकोंका शिक्षा और संस्कृतिके एक विशेष स्तरपर पहुँचना आवश्यक है। नहीं तो इसका सारा सौन्दर्य उनके सामने निरर्थक हो जायगा।

लेकिन 'बन्दर' बनाते समय वह रखा हुआ तान्त्रिकस्पका स्तर रचनामें किसी भी दशामें रहना सम्भव नहीं है और रहता भी नहीं है। शायद इसी लिए 'बड़ा दिन' मुझे अच्छा नहीं लगा। उसके शिक्षाके तमाशेको नहीं पकड़ पाया।

ऐसा भी हो सकता है कि मैं बिलकुल ही समझ नहीं सका। शायद यही बात हो। अतएव मेरे लिए अच्छा लगने न लगनेकी कोई कीमत नहीं भी हो सकती है। हो सकता है कि इसमें आखिरतक अनधिकार-चर्चा की है। अगर ऐसा हुआ हो तो माफ करें। अनधिकार-चर्चाकी बात मैं अति विनयसे नहीं

कर रहा हूँ। क्योंकि मैंने पढ़ना लिखना नहीं सीखा है। अँगरेजीका अच्छा ज्ञान नहीं रहनेसे रचनाके भले-बुरेके विचारकी क्षमता नहीं आती है। यह क्षमता भी शिक्षासापेक्ष है। बड़े-बड़े लोगोंकी बड़ी-बड़ी आलोचनायें जिन्होंने नहीं पढ़ी हैं वे स्वाभाविक अभिरुचिसे भी ही एक प्रकारसे नहीं समझ पाते हैं ऐसा बात नहीं लेकिन जो चीज उनके प्रत्यक्ष अनुभवके बाहर है, उसके भीतर एक क्षण भी वे प्रवेश नहीं कर पाते हैं। बाहर खड़ा हुआ बन्द किवाड़की ओर टकटकी लगा देख रहा है पर वह यह भी समझ नहीं पाता है कि किवाड़ बन्द हैं इसी लिए तो सभी चीजोंके सभी आलोचक हैं। समझते हैं कि शब्दोंके अर्थ जब समझमें आ रहे हैं तो सब-कुछ समझ रहे हैं। अँगरेजीकी बात इसलिए उठाई कि बँगला भाषामें आलोचनाकी पुस्तक भी नहीं है और सीखनेकी जगह भी नहीं है। इसे भी बाकायदा शागिर्द बनकर सीखना पड़ता है, यह धारणा भी नहीं है। मुझमें धारणा है, इसीलिए इतनी बातें लिखीं। इन बातोंको मैंने विद्वानोंके मुँहसे सुना है अतएव मेरे अच्छा लगने न लगनेका मूल्य इसी अभ्यासमें लगायें। मैं जानता हूँ कि मैं ऐसी वैसी आलोचना लिखकर आपके लिए भेजूँ, तो वह उस आदरकी और इसके लिए आपकी अनुमति लेनेकी भी आवश्यकता नहीं, पर आपकी रचनाओंपर मुझे बड़ा अधिक श्रद्धा होनेके कारण ही अपनी अक्षमता सूचित कर आपको पत्र जानना चाह रहा हूँ। अगर आपत्ति न हो तो कुछ कहनेकी छुट्टी लिए दूँ। मेरी दशहरेकी श्रद्धा स्वीकार करें।

—श्री शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

१०

[श्रीमती लीलारानी गंगोपाध्यायको लिखित]

बाजे-शिवपुर (हवड़ा)
२४-७-१९१९

परम कल्याणीयासु! आपका पत्र और 'मिलन' शुरूसे आखिरतक पढ़ गया। मेरी पुस्तक अच्छी लगी है ग्रन्थकारके लिए इससे बढ़कर दूसरा पुरस्कार और क्या हो सकता है।

आपने भक्तिकी माँग की है। भक्ति कहीं केवल विनय नहीं है, सच्ची वस्तु है जहाँ इसका दावा अपार हो है। पर भक्ति किसकी करते हैं, इसपर भी जरा विचार करना आवश्यक है।

आपसे मेरा परिचय नहीं इसलिए अधिक प्रश्न करना शोभा नहीं देता। फिर भी पूछनेकी इच्छा होती है। आप जब ब्रह्म-समाजकी नहीं हैं, तो विधवा विवाह क्यों कर लेना चाहती हैं।

यह क्या यौवनकी तरंग है या प्रेम और खुशीकी लालच देखकर कल्पना उत्पन्न हुई है। इसमें क्या आपको वास्तविक आपत्ति नहीं है। अगर यह है, और अगर 'मिलन' हो जानेसे चित्त प्रसन्न होता है, तो मिलनका कोई विशेष मूल्य है ऐसा मैं नहीं समझता।

हर रचनाके ऊपरतर अर्थात् रचनाके भले-बुरे विचारसे इस रचनाका मूल्य निश्चित करना एक छोटी चिट्ठीका काम नहीं।

आपने मेरी सारी पुस्तकें पढ़ी हैं कि नहीं मैं नहीं जानता। अगर पढ़ी हैं तो कमसे कम यह बात निश्चय ही देखी होगी कि कितने ही बड़े और सुन्दर जीवन समाजमें केवल विधवा-विवाह नहीं होनेके कारण ही सदाके लिए व्यर्थ और निष्फल हो गये हैं। इससे अधिक अपने बारेमें कुछ नहीं कहना है।

—श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

बाजे-शिवपुर, हवड़ा
२६-७ १९

परम कल्याणीयासु। आपका पत्र मिला। मुझे पत्र लिखकर उत्तरकी आशा करना अत्यन्त दुराशा है। मेरे इस सुन्दर स्वभावकी खबर आपको कैसे लग गई यही सोच रहा हूँ। क्योंकि बात इतनी सच्ची है कि इसका प्रतिवाद करना मेरे लिए बिलकुल असम्भव है। सचमुच ही लोगोंको मुझसे जवाब नहीं मिलता— मैं इतना बड़ा आलसी हूँ।

फिर आपको दो-दो चिट्ठियाँ कैसे लिखीं यह सोचनेपर देखता हूँ कि आपने जो भक्तिका दावा किया है उसीने इस असम्भवको सम्भव किया है। वस्तुतः यह

परन्तु मनुष्यसे न जाने कितने विचित्र काम करवा लेती है। मुझे जो माँकी तरह भक्ति करती है उसीको पत्र लिख रहा हूँ उसीकी बातोंका जवाब दे रहा हूँ, इसके अन्दर कितना विराट गर्व प्रच्छन्न है!

आपको कुछ छिपाया नहीं आँखोंसे कभी देखा नहीं। किसकी कन्या, किसकी बहू क्या परिचय है, कुछ भी नहीं जानता। पर अपनेको जब मेरी छोटी बहन कह रही हैं,—यह सौभाग्य कदाचित् ही किसीको मिलता है—तब यह जिसके भाग्यमें होता है उसपर एक प्रकारका नशा छा जाता है।

मुझे नहीं जानते हुए और एक हिन्दू घरकी बहू होकर भी आपने मुझे निःसंकोच पत्र लिखा है। यह सच है कि ऐसा सबसे नहीं हो सकता लेकिन मैं भी आपको निःसंकोच पत्र लिख सकता हूँ प्रश्न कर सकता हूँ यह साहस आपके मनमें नहीं थी, इसीसे लिख सकी हैं। होती तो नहीं लिख सकतीं। मेरे प्रति इतना विश्वास आपके अन्दर था ही। अन्यथा मेरा इतनी पुस्तकोंका लिखना व्यर्थ होता।

अच्छी बात है। छोटी बहनकी तरह तुम्हें जब इच्छा हो मुझे चिट्ठी लिखना। मेरी सच्ची शिष्या और सहोदरासे अधिक एक व्यक्ति है। उसका नाम है निरुपमा। जो आजके साहित्य-जगत्में शायद आपसे अपरिचित न हो। 'दीदी', 'अन्नपूर्णाका मन्दिर' और 'विधि-लिपि' आदि उसकी रचनाएँ हैं। पर यही लड़की एक दिन जब अपनी सोलह सालकी उम्रमें अकस्मात् विधवा होकर सन्न रह गई तब मैंने उसे बार-बार यही बात समझाई कि "विधवा होना ही नारी जीवनकी चरम हानि और सधवा होना ही परम सार्थकता है इन दोनोंमें कोई भी सत्य नहीं" तबसे उसे समग्र चित्तसे साहित्यमें नियोजित कर दिया। उसकी सभी रचनाओंका संशोधन करता और हाथ पकड़कर लिखना सिखाता था—इसलिए आज वह आदमी बनी है। केवल नारी होकर नहीं।

यह मेरे लिए बड़े गर्वकी वस्तु है।

तुमने लिखा है—जिनने पतिको जाना नहीं पहचाना नहीं ऐसी बाल-विधवाके व्याहमें क्या दोष है? तुम्हारे मुखसे इतनी बातकी बहुत कीमत है। और मेरी रचनाएँ अगर एक भी बाल-विधवाके प्रति तुम्हारे अन्दर करुणा उत्पन्न कर सकी हों, तो मुझे बहुत बड़ा पुरस्कार मिला है।

अब तुम्हारी रचनाओंके सम्बन्धमें कुछ कहूँगा । आजकल अनगिनत लेखिका उपन्यास लिख रही हैं । उनमें दो चीजोंको मैंने लक्ष्य किया है । पहली बात यह है कि पुरुषोंकी रचनाएँ प्रायः अन्तःसारहीन और अपाठ्य हैं । यही नहीं, उनमें ज्यादह भाग दूसरोंकी चुराई हुई हैं और इसमें वे अक्षमताका अनुभव नहीं करते हैं । किताबोंके बिक जानेको ही वे काफी समझते हैं ।

दूसरी बात यह देखी है कि स्त्रियोंकी रचनाओंमें और चाहे जो हो कमसे कम वे दूसरोंकी चुराई हुई नहीं हैं । उन्होंने अपने छोटेसे परिवारमें जो कुछ देखा है अपने जीवनमें यथार्थका जो अनुभव किया है, उसीको कल्पना द्वारा प्रकट करनेकी चेष्टा की है । अतएव उनमें कृत्रिमता भी अधिक नहीं है ।

तुम्हारी रचनामें जो सत्साहस और सच्चाई है उसने मुझे मुग्ध किया है । रचना बहुत अच्छी नहीं होनेपर भी अपनी अकृत्रिमताके ही सुन्दर बन पड़ी है । मुझसे परिचिति लिखवानेमें समय नष्ट मत करवाओ स्वतन्त्र रूपसे पुस्तक लिखो । मैं आशीर्वाद देता हूँ तुम किसीसे हीन न रह सकोगी ।

यहाँ तुम्हें एक उपदेश देना चाहता हूँ । नारीके लिए पति परम पूजनीय व्यक्ति है सबसे बड़ा गुरुजन है । लेकिन इसके माने यह नहीं कि स्त्री पुरुषकी दासी है । यह संस्कार नारीको जितना छोटा जितना तुच्छ कर देता है, उतना और कुछ नहीं ।

जब कभी पुस्तक लिखना इसी बातको सबसे अधिक याद रखनेकी चेष्टा करना । पतिके विरुद्ध कभी विद्रोहका स्वर मनमें नहीं लाना चाहिये । लेकिन पति भी मनुष्य है मनुष्यको भगवान्‌के रूपमें पूजा करना केवल निष्फल ही नहीं, इससे वह अपनेको भी और पतिको भी छोटा बना देती है ।

तुमसे एक प्रश्न और करूँगा । "जिस विधवाने पतिको जाना नहीं, पहचाना नहीं ।"

लेकिन जिसने एक बार जाना है पहचाना है अर्थात् जो १६ १७ वर्षकी उम्रमें विधवा हुई है उसे क्या अपने अपने जीवनमें और किसीसे प्यार करने या प्यार करनेका अधिकार नहीं ? क्यों नहीं ? जरा सोच देखनेपर पता चल जायगा कि इसमें यही संस्कार छिपा हुआ है कि स्त्री पतिकी वस्तु है । क्योंकि इसमें नारीकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है ।

"हेम संशयके अन्दर दिन बिता रही थी। जिसमें रुकता नहीं है, उसके लिए क्या बन्धन ही अच्छा नहीं?"

बन्धन अच्छा तभी अच्छा होगा जब इस प्रश्नका अन्तिम निर्णय हो जायगा कि विवाह ही नारीके लिए सर्वश्रेष्ठ श्रेय है।

लेकिन मैंने कहीं भी विधवा-विवाह नहीं करवाया है, यह बात तुम्हें विचित्र लग सकती है।

इसका उत्तर यह है कि संसारमें बहुतेरी विचित्र चीजें हैं और चेष्टा करनेपर भी उनके कारण नहीं मिलते।

तुम मेरा आशीर्वाद लेना।—

—श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

मंगलवार, ५ अगस्त, १९१९
बाजे शिवपुर—हवड़ा

परम कल्याणीयासु। आपकी कापी और अन्तरकी दूसरी रचनाएँ यथासमय मिल गई हैं और इतनी जल्दी उत्तर देने बैठा हूँ, यह देखकर अपने आपको ही खुशी हो रही है। ऐसा लग रहा है कि इस बार आपको बहुत-सी बातें कहनेकी आवश्यकता है। लेकिन आपकी तरह सिलसिलेवार पत्र लिखनेकी शक्ति मुझमें इतनी कम है कि हितैषी मित्रगण साफ-साफ सुना देते हैं कि मेरे नितान्त विशृंखल और बच्चों जैसे लिखे हुए पत्रोंको पूरा पढ़नेमें उनके लिए धैर्य कायम रखना कठिन हो जाता है और अगर वह किसी तरह समाप्त होते हैं तो अर्थ समझनेके लिए एड़ी-चोटीका पसीना एक करना पड़ता है। अभियोग बिलकुल निराधार नहीं है अतएव विनयकी दोहाई देकर भी इसका प्रतिवाद नहीं किया जा सकता। और इसके नमूनेसे आपको वंचित नहीं किया है। इस खबरको गुप्त रूपसे अगर आप अपने इष्ट-मित्रोंमें प्रकट कर देंगी, तो मैं नाराज नहीं हो जाऊँगा।'

बहुतेरी भद्र-महिलायें मेरी मित्र हैं। उन्हें पत्र लिखने और मित्रकी भाँति ही निःसंकोच होकर लिखनेमें मुझे हिचक नहीं होती। लेकिन हमारा

समाज और उसके नियम-कानून ऐसे हैं कि छोटी बहनतकको चिट्ठी लिखनेमें केवल संकोच ही नहीं शंका भी होती है कि कहीं आपके अभिभावक या पति कुछ समझ बैठें और उसके लिए आपको दुःख उठाना पड़े। फिर भी जो आपको इतनी बातें लिखने बैठा हूँ उससे आपके पत्रोंको पढ़कर मुझे बारम्बार यही लगा कि जिस उम्रमें नारीमें आत्म-मर्यादा उत्पन्न होती है यह उसी उम्रकी लिखी हुई है। यह गाम्भीर्य, यह शान्त और संयम नारियोंमें पचीसके इधर पैदा होते देखा है ऐसा मुझे नहीं लगता। हाँ, आपके बारेमें मैं गलती कर सकता हूँ। लेकिन गलती न होनेसे ही मैं निश्चिन्त होऊँगा। क्योंकि नितान्त तरुण वयसकी आत्मीय रमणीसे पत्र-व्यवहार करनेमें क्यों हिचक और संकोच होता है अगर उस उम्रको पार कर गई हैं तो अनायास ही समझ जायँगी। लेकिन सबसे बड़ी बात यह है कि तुमने मुझे बड़ा भाई (दादा) कहा है। बड़े भाईके सामने छोटी बहनके लिए शरमानेकी कोई विशेष बात नहीं। बड़े भाईके सम्मान और मर्यादाको अक्षुण्ण रखते हुए तुम्हें जब इच्छा हो और जो इच्छा हो लिखना और जितना चाहे बड़े भाईपर अत्याचार उपद्रव करना, मुझे आनन्द ही होगा।

तुम्हारी चिट्ठीका और लेख लिखनेका ढंग तथा भंगिमा देखकर मुझे बारम्बार बुढ़ि (निरुपमा) की याद आती है। तुम लोगोंकी लिखावटतक मानों एक है।

पानीमें भीगनेके कारण इन चार-पाँच दिनोंसे ज्वर-सा हो गया है। कहीं नहीं जा पानेके कारण तुम्हारी कापीको बड़े ध्यानसे पढ़नेका अवकाश मिला। पढ़ते पढ़ते कैसा लगा जानती हो? एक कीमती चीजोंकी दूकानमें बेफिक्रीसे बिखरी पड़ी चीजें देखकर उन चीजोंकी कीमत जो जानता है उसे जैसा लगा होता है ठीक वैसा ही। ठीक इसी तरहसे एक दिन बुढ़ि (निरुपमा)की रचनाएँ भी मिली थीं।

सोची तुम्हारे पास बहुत कीमती माल-मसाला मौजूद है। पर बहुत ही विशृंखल है। मेरा ऐसा नहीं है इससे बारम्बार यही लगता है कि उसकी तरह तुम्हें भी हाथ पकड़कर सालभर भी सिखा सकता तो इसके पहले मैंने तुम्हें जो आशीर्वाद दिया था, उसकी शाखियोंके पत्र-पुष्पोंसे भर उठनेमें अधिक देर

नहीं जमाती और 'चीनी की कोठरी' एक और पुस्तक लोगोंकी नजरोंके सामने आनेमें बहुत विलम्ब न होता। लेकिन जब वह होनेका नहीं तो दुःख करनेसे क्या होगा! मनमें सोचता हूँ, इस तरहके सैकड़ों व्यक्ति केवल थोड़ा-सा लिखा देनेके अभावके कारण नष्ट हो रहे हैं। कौन खबर लेता है! जो केवल घृणा करते हैं जिनमें चोरी करनेके सिवा और कोई शक्ति नहीं वही टोकरियों गन्दगीसे बंगला साहित्यको दूषित और भाराक्रान्त कर रहे हैं। पर जिन्होंने संसारमें सत्यकी उपलब्धि की है, अपने जीवनसे जिन्होंने स्नेह और प्रेमके स्वरूप-का अनुभव किया है वे अन्धकारमें ही पड़े रहते हैं। दुःखकी आगमें जलकर जिनकी अनुभूति शुद्ध और सत् नहीं हो पाई, उन्हींपर आजकल साहित्य-सर्जनका भार आ पड़ा है, इसीलिए साहित्य आजकल इस तरह नीचेकी ओर जा रहा है।

सीता, केवल हृदयमें अनुभव करनेसे ही किसी चीजको भाषामें व्यक्त नहीं किया जा सकता। सभी चीजोंको कुछ-न-कुछ सीखना पड़ता है और यह सीखना सदा अपने आप नहीं होता। लेकिन क्या करूँ दीदी, तुम्हें सिखाकर नियमानुसार तैयार करा लूँ, इतना अवकाश नहीं। और जब नहीं है उसके लिए अफसोस करनेसे क्या होगा!

जो कुछ भी हो तुम्हें मोटे रूपमें एक उपदेश देना है। रचनाको अध्यायोंमें विभक्त करना चाहिये और रचनाका अधिक अंश लेखकके मुँहसे न कहलाकर पात्र-पात्रियोंके मुँहसे कहलाना चाहिये। जहाँ ऐसा नहीं किया जा सकता केवल वहीं लेखकके मुँहकी बातोंसे पाठकोंका धीरज नहीं टूटता है। और एक बात यह है कि धार्मिक छोटी-मोटी बातोंको लेकर अपनेको और पाठकोंको दुःख न देना चाहिये। बहुतेरी बातें उनकी कल्पनाके लिए रख छोड़नी चाहिये। लेकिन कुछ लेखक करे और कुछका पाठक पूरा करें यह वस्तु शिक्षा-सापेक्ष भी है और बुद्धि-सापेक्ष भी।

अबसे तुम्हारी शिक्षा शुरू है। अध्यायोंमें बाँटकर मेरी पुस्तकोंके ढंगपर लिखना आरम्भ करो और दो अध्याय लिखकर मेरे पास भेजो, मैं काट-कूटकर (अपनी सामर्थ्य शक्तिके अनुसार) तुम्हें वापस कर दूँगा और उसीके साथ

छापनेका कारण भी लिख दूँगा। यह परिश्रम मैं क्यों करूँगा जानती हो बीबी! तुम्हारे द्वारा सचमुच ही साहित्यके मन्दिरमें पूजाकी सामग्री जुटानेके लिए और यह आशा करता हूँ कि वह चीज बहुत तुच्छ मूल्यकी न होगी। यदि तुम्हारे अन्दर इस वस्तुका मूल स्पष्ट नहीं देखता तो तुम्हें सिर्फ दबी रखनेवाली मधुरताकी या दूसरी खुशामदकी बातें लिखकर अपना और तुम्हारा दोनोंका समय नष्ट नहीं करता।

मेरी इस बातको याद रखना, मेरे आशीर्वादसे तुम किसीसे कम भी न होगी।

तुम्हारी कापी दो चार दिनके बाद वापस कर दूँगा। 'काको' कहानीको मेरी परिणीताकी तरह और एक बार अध्यायोंमें बाँटकर नहीं भेज सकती हो? बीबी पहले बहुत दुःख बहुत कष्ट उठाना पड़ता है असहिष्णु होनेसे काम नहीं चलता। यह वस्तु इतने दुःख और इतने परिश्रमकी होनेके कारण ही इसका इतना मूल्य है। पहले ऐसा लगता है कि बहुत-सा परिश्रम व्यर्थ जा रहा है। लेकिन कोई परिश्रम कभी यथार्थमें नष्ट नहीं होता —किसी-न-किसी रूपमें उसका फल मिलता ही है। रात बहुत हो गई है ऊपर जानेके लिए वह बहुत चिल्ल-पों मचा रही है इसलिए आज यहीं समाप्त करता हूँ। आज भी पेटमें अन्न नहीं पचनेके कारण चिट्ठीमें गड़बड़ी रह गई। जरा कष्ट उठा कर पढ़ना और कहीं अगर कोई बात सिलसिलेवार नहीं है तो 'बड़ा दादा' होनेके कारण मुझे माफ करना। मेरा आशीर्वाद लेना। रातके साढ़े बारह बजे।

तुम्हारा दादा।

जब ठीक लगेगा तब स्वयं ही मासिक पत्रमें छपनेके लिए भेज दूँगा। मेरे भेजनेसे कभी कोई सम्पादक 'ना' नहीं करता। वह जानते हैं कि उपयुक्त न होनेपर मैं नहीं भेजता। दफ्तरीके कामोंके कारण तुम्हें बहुत कम समय मिलता है यह ठीक है। फिर भी यह सच है कि अनवकाशके अन्दर तो शायद कभी समय मिल जाता है, लेकिन अवकाशके अन्दर कभी काम करनेका अवकाश नहीं मिलता।

बाजे शिवपुर, हवड़ा
१४-८-१६

परम कल्याणीयासु ! कल और आज तुम्हारी बड़ी और छोटी दोनों चिट्ठियाँ मिलीं । पहले अपना समाचार दे दूँ । मैं हमेशा सारे दरवाजे और खिड़कियाँ खोलकर सोता हूँ । उस दिन चार बजे नींद टूटनेपर देखा तो बिछौना तकिया और सब कपड़े छींटोंसे इस तरह भीग गये हैं कि जाड़ा लग रहा है और दुर्भाग्य की बात यह कि उस दिन शामको भी पानीमें कम नहीं भीगा था । दोनोंको मिलाकर कुछ ज्वर-सा हो गया । लेकिन एक दिनमें ठीक नहीं हुआ, बढ़ता ही गया । अब वह उतर गया है । दूसरी बात और भी मजेदार है । कई दिनसे दाहिने पैरके घुटनेके कुछ नीचे इतनी जलन और खुजली हुई कि बेचैन हो गया । चार दिन पहले सबेरे उठकर देखा कि एक जगह लाल होकर एग्जिमा सा हो गया है । कुछ कुछ सूजन भी है । कुछ दिनोंसे सुन रहा था कि इस तरफ बेरी-बेरी रोग खूब होता है, पर वह क्या है आजतक भी देखनेका मौका नहीं मिला । सोचा शायद उसीने पकड़ा है । उसके मारे बुरा हाल रहा । टिंचर आयोडीन लगाना शुरू कर दिया । लेकिन कई बार लगातार लगानेसे उसने ऐसा रूप धारण किया कि सचमुचके बेरी-बेरीका होना कहीं अच्छा होता । डाक्टरने आकर बुरी तरह फटकारना शुरू किया—आपमें क्या किसी विषयमें तनिक भी सब्र नहीं है ! अब कास्टिक या पलिड-पेस्टिल लगाकर जो कुछ चाहें, करें मैं चला । जो कुछ हो बादमें उन्हें रोककर रखा और मालिशकी व्यवस्था करनेका हुक्म देकर वह गये—दोनों पैरोंको तकियेपर रखकर चुपचाप पड़े रहिये । क्या करूँ दीदी, इसलिए पड़ा हुआ हूँ । तीसरी बात है मैं कभी अमलका रोगी नहीं रहा इतना कम खाता हूँ कि वह भी पाव नहीं पचता कि कहीं उसे भी भूखों नहीं मरना प॰ । उस दिन घरपर बनाये गये कुछ सन्देश जबरदस्ती खिला दिये । पर आज भी उनकी डकार आ रही है । मैं इस देशका मशहूर आदमी हूँ । खानेके डरसे किसी चीजका आसानीसे मुझमें नहीं डालता मुझसे यह अत्याचार कैसे सहा जाय ! क्या करती हो दीदी, ठीक है ! लेकिन घरके लोग नहीं समझते । वह सोचते हैं कि न खानेके कारण ही मैं दुबला गया हूँ । अतएव खानेसे ही उनकी तरह मोटा होकर सुखी हो जाऊँगा ।

स्वर्गीय गिरीश बाबूने अपने 'आबू हुसेन'में असल बातकी एक बात कही है— "भाग्यमें बड़ी बदनी होती है, वह मरनेपर भी जाती है।" औरतकी जातिको उन्होंने पहचान लिया था।

आज बीस वर्ष पहलेसे हम केवल खानेको ही लेकर लाठी चलाते आ रहे हैं। उन्होंने नहीं खाया और न खाकर दुबले हो गये। घर-गृहस्थी और रसोई किसके लिए है? कहाँ दोनों आँखें ले जायँगी कहाँ जाकर बैरागिनी हो जाऊँगी इत्यादि कितनी ही बातें। मैं कहता हूँ—अरे भाई, बैरागिनी होना है तो जल्दी हो जाओ। तुम तो मुझे डर दिखा कर कौड़ेकी तरह झुला रही हो। यथार्थमें मेरे दुःखको किसीने नहीं देखा। मैं अक्सर सोचता हूँ कि अगर सचमुच ही कहीं स्वर्ग है, तो वहाँ एक आदमी दूसरेको खानेके लिए इतनी जबर्दस्ती नहीं करता होगा और अगर है तो मैं नरकमें जाना ही पसन्द करूँगा।

हाँ, एक बात और है। कोई बीस दिन पहले कुत्तेका झगड़ा मिटाने गया, तो कहींसे एक लोफर कुत्तेने आकर मेरी हथेलीमें दाँत जमा दिया। अभागा कुत्ता कितना अकृतज्ञ है! उसे अपने 'भेलू' के चंगुलसे बचाने गया था। डरके मारे किसीसे कहा नहीं। सूख गया था लेकिन कलसे फिर दर्द हो रहा है।

लेकिन अब नहीं। लिखनेका मतलब अपनी शारीरिक कुशलतावाली तालिकाको एक प्रकारसे समाप्त करता हूँ। लेकिन मुश्किल बात है कि मैं वृद्ध हो गया हूँ। अबसे एक-न-एक बहाना करके चलना होगा। न जाने कितने प्रकारके दुःख-रोग और आफत-विपतके बीचसे ४ वर्ष काटे हैं। सुना है मेरे वंशमें आजतक ४ तक कोई नहीं पहुँचा। कमसे कम इस बातमें तो मैंने अपने बापदादोंको हराया है। और चाहिये ही क्या!

जाने दो बूढ़ोंके मरने-जीनेको लेकर तुम लोगोंको उद्विग्न नहीं करना चाहता। लेकिन देखो तुम भी तो अच्छी नहीं हो! शरीरका ख्याल रखना। परिश्रम करनेकी आवश्यकता नहीं, चंगी होकर घर लौट आओ तब सब-कुछ होगा। तुम्हारी कापीकी सारी रचनाओंको ध्यानसे पढ़ गया। इसमें सब-कुछ है लेकिन शिक्षा नहीं है। तालीम हासिल करनेके कौशलका भी अभ्यास करना चाहिए भाई, नहीं तो केवल अपनी अनुभूतिके सहारे काम नहीं चलता। पर मैं इसी पेशेमें हूँ और जानता हूँ कि इतना सिखा देनेमें मुझे अधिक देर नहीं लगेगी।

कितना लिखना चाहिए, किस चीजको छोड़ देना चाहिए, किसे पी जाना चाहिए—

"घटे जा ता सब सत्य नय
कवि तव मन भूमि रामेर जनमस्थान
अयोध्यार चेये ढेर सत्य जेनो।"

इतनी बड़ी सच बात दूसरी नहीं है। दीदी जितनी घटनाएँ घटती हैं उनमेंसे सारी नहीं लिखनी चाहिये। कुछको साफ-साफ कहना चाहिए, कुछ इशारेसे कुछको पाठकोंके मुँहसे कहलवा लेना चाहिये। हाँ, तुम्हारी जितनी सहायता कर सकता था, केवल पत्र लिखकर, काट-कूट कर, दूर रहकर उतनी नहीं होगी फिर भी चेष्टा करनी ही होगी। और इस बार भी काममें निकल सका तो तुम्हारे हिन्दुस्तानियोंके देशमें १०—१५ दिनके लिए वहीं नजदीक ही मकान लेकर थोड़ी सी सहायता करनेकी चेष्टा करूँगा। और अगर मेरे सनातन व्याकरणने उस वक्त घेर लिया तो वह अतिरिक्त।

महिलाएँ! वे लिखकर रहीं उनमेंसे बहुतोंके सामने तुम्हें लानेकी फायद मुझे प्रवृत्ति ही नहीं होती है। एक बात साफ कह दूँ। वे दूसरे सुननेमें ही" भले आई हैं उतना लिखिया हैं। लो-भारको छोड़कर वे मन-ही-मन मुझसे बहुत डरती हैं। उन्हें निरन्तर लगता है कि मैं उनके अन्तरको भलीभाँति देखे ले रहा हूँ। इसीलिए मेरे सामने उन्हें चैन नहीं मिलती है। उनका अन्तर इतना कृत्रिम है संकीर्णताके पैदा भया है। वस्तुतः इन लोगों जैसे संकीर्ण मनकी स्त्रियाँ बंगालमें और नहीं हैं। दीदी मैंने कभी भी जाने पूछेका भेद नहीं किया है। लेकिन 'महिलाओंके हाथोंका कुछ भी नहीं खाता। खाता हूँ केवल उन्हींके हाथोंका जिनके माँ बाप दोनों ब्राह्मण हैं और ब्याह भी ब्राह्मणसे हुआ है। ब्याहकी तो इसमें कुछ बनता बिगड़ता नहीं लेकिन उस तरहकी खिचड़ी अवस्था पुख मैं नहीं लाता। कहते हैं कि शरत् बाबू बड़ी-बड़ी बातें लिखते भर हैं पर यथार्थमें बहुत कट्टर हैं। मैं कट्टर नहीं हूँ दीदी लेकिन केवल गुस्सेके कारण ही इनके हाथोंका नहीं खाता। और शायद यह भी देखा है लड़कियोंमें सारे फ्रॉड आने कुरूप रखती हैं। सिर्फ साबुन पाउडर और कपड़ों लत्तोंसे और आधुनिक गहनों ब्लाउज एक बार! केवल चार-पाँच लड़कियाँ

को देखा है, जो सचमुच ही प्रशंसाकी पात्री हैं। बी० ए० पास होनेपर भी हमारी बहनोंमें और उनमें अन्तर नहीं किया जा सकता। इतनी अच्छी हैं कि लगता है वे आज भी हिन्दू लड़कियाँ ही हैं।

लड़कियोंकी निन्दा कर रहा हूँ, इसलिए शायद तुम्हें बहुत क्रोध हो रहा होगा। लेकिन जानती तो हो दीदी, अन्दर अन्दर तुम लोगोंके प्रति मुझमें कितनी श्रद्धा कितना स्नेह है! केवल उनका बनना, विद्याका प्रदर्शन और कुसंस्कारवर्जित शौकीनीका दम्भ, और जो सच नहीं है उसका भान इन्हीं बातोंको देखकर मुझे इतनी अरुचि है।

उनके सामने तुम महाभारतकी पात्र बनोगी! क्या कहूँ इनमेंसे एकाध दर्जन को गाड़ीमें भरकर अगर तुम्हारे कानपुरको चालान कर सकता। और कुछ न हो, भाईके काम आ सकतीं।

'दादाकी मर्यादा'! कैसे जानोगी, तुम्हारे तो कोई दादा नहीं है।

तुम्हारे पतिके उदार विचारोंकी बात सुनकर बड़ी खुशी हुई। मैं हृदयसे उन्हें आशीर्वाद देता हूँ। लेकिन दीदी उन्हें एक बात कहनेकी इच्छा होती है। मैंने स्वयं लड़कपनमें एक बार दस-बारह तो कुलत्यागिनी बालिकाओंका इतिहास संग्रह किया था। बहुत समय बहुत रुपये इसमें नष्ट हुए थे। लेकिन उससे मुझे एक विचित्र शिक्षा भी मिली थी। बदनामी देश-भरमें फैल गई पर इस बातको अतिरिक्त रूपसे जान सका कि जो कुल त्याग करके जाती हैं उनमें अस्सी प्रतिशत प्रायः सधवायें हैं विधवायें बहुत ही कम हैं। पतिके जीवित रहनेसे ही क्या और उसे पहरेमें रखनेसे ही क्या! और विधवा होनेसे भी क्या! दीदी, अनेक दुःखोंसे ही नारी अपना धर्म नष्ट करनेके लिए तैयार होती है और जिस लिए होती है वह पर-पुरुषका रूप नहीं और किसी बीभत्स प्रवृत्तिका लोभ भी नहीं। जब वे अपनी इतनी बड़ी वस्तुको नष्ट करती हैं तो बाहर जाकर किसी आश्चर्य वस्तुको पानेके लोभसे नहीं, सिर्फ किसी यातनासे अपनेको मुक्त करनेके लिए ही इस दुःखको सिरपर उठा लेती हैं। इन सब बातोंका तुम शायद नहीं समझोगी और मेरा कहना भी शायद शोभा नहीं देता। लेकिन सबसे बड़ी बात यह है कि तुम तो केवल नारी ही नहीं हो, मेरी छोटी बहन भी हो न! और संसारमें यह वस्तु नितान्त तुच्छ नहीं है।

'कहानी के भीतर कितना सच और कितनी कल्पना है नहीं जानता। लेकिन अगर कल्पना है तो अवश्य ही बहादुरीकी बात है। देखता हूँ साहसका तो ठिकाना नहीं! वह कौन है? अब पत्रिकाके बारेमें कुछ कहना चाहिये। उसे अधिक दिनोंसे नहीं जानता हूँ सही पर यह जानता हूँ कि वह निर्मलचरित्र और सचमुच ही बहुत अच्छा लड़का है। तुम्हें शायद 'दीदी' कह भी सके क्योंकि उम्रमें शायद दो-चार महीने छोटा ही होगा। उससे कभी किसी नारीकी मर्यादा नहीं होगी मेरा तो यही विश्वास है। उसे तुम चिट्ठी लिख सकती हो, कोई नुकसान नहीं। और इसके अलावा तुम भी तो बिल्कुल स्वर्ण हो न। किसका कैसा सम्मान है कैसी मर्यादा है, मेरी दृढ़ धारणा है कि वह तुम्हारे निकट सुरक्षित रहेगी। सुनता हूँ कि इसी बीच वह प्रचार कर रहा है कि थोड़े ही दिनोंमें बंगला-साहित्यमें एक ऐसी लेखिका दिखाई पड़नेवाली हैं जो किसीके पीछे नहीं खड़ी होंगी। कल एक आदमी उस 'मिलन'को अपनेके लिए मेरी खुशामद करने आया था। मैंने नहीं दिया। कहा कि पत्रिकाके उपयुक्त नहीं है। अलदबाजीकी जरूरत नहीं। बहुतसे बहुत अच्छा कहेंगे, जानता हूँ। निन्दा करनेवालोंकी भी कमी नहीं होगी, वह भी जानता हूँ। मैं धीरज रखकर एक साल का इन्तजार कर अब मासिक पत्रिकामें छपनेके लिए दूँगा तब यह सन्देह जाता रहेगा।

मैंने तो तुम्हें शिष्या बनाना स्वीकार कर लिया है। पर देखना बहन, मुस्लमें मूरीकी तरह गुरुको मारनेकी विद्या नहीं हासिल कर लेना। वह तो मुझसे बड़ी हो ही गई हो; हो सकता है अन्ततक तुम भी बड़ी हो जाओ। संसारमें निश्चित कुछ भी नहीं कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

लेकिन इसे स्वीकार करूँगा तब जब तुम लिखकर सूचित करोगी कि तुम चंगी हो गई हो अब कोई रोग नहीं है। नहीं तो दिक्की बीमारीवाले आदमी को शागिर्द नहीं बनाऊँगा। उसे पहले डाक्टरका प्रमाणपत्र पेश करना होगा, इस बातको बताये देता हूँ। मैं परिश्रम करके सिखाऊँगा और तुम अचानक चल बसोगी मेरे परिश्रमको बेकार कराओगी यह नहीं होनेका।

तुमने एक बार लिखा था मामका परिचित श्रीरामपुर'। और 'जयरामपुर' क्या अपरिचित है? उसके मलेरिया और बर्रोंकी तरह मच्छड़ोंका झुण्ड आसानीसे

भूल जाय ऐसे आदमी तो शायद ही मिलें। पिछले बैसाख महीनेमें इसी वजहसे बहू भात (खिचड़ी) का आमन्त्रण नहीं स्वीकार कर सका। जयरामपुरकी एक और लड़की मुझे दादा कहती है और मैं कहता हूँ उसे छोटी दीदी।

देहरी जा रही हो? जब तुम्हारा जन्म भी नहीं हुआ था तब मैं उस देहरीकी नहरके किनारे पकी खिरनियाँ बटोरता था और फन्दा डालकर गिरगिट पकड़ता था। ओह, कितने दिनोंकी बात है! जब रेल नहीं बनी थी तब छोटे स्टीमरपर चढ़कर आरासे जाना पड़ता था। तुम्हारे बँगलेको भी मैं शायद आँखोंसे देख रहा हूँ। अच्छा तुम्हारे घरसे निकलते ही दाहिने हाथ सूरज नहीं निकलता है? उन दिनों सती-चौरा या इसी तरहके किसी नामका घाट था। तुम्हारे यहाँसे शायद दो मील होगा। कुछ काल वहाँ जाकर बैठा करता था। नहीं जानता उस घाटका अस्तित्व आज भी है या नहीं?

'घुमक्कड़'को आने-जानेमें कोई बाधा नहीं दिखाई पड़ती। अच्छा, बर्मा की इतनी बातें कैसे जान लीं? वहाँका मजिस्ट्रेट (डिप्टी) म्यूक था, यह किसने बतलाया? मोटरसे आने जानेका रास्ता है यह किससे सुना? अगर सचमुच ही बर्मामें रही हो, तो कहाँ थीं? उस देशका कोई भी स्थान नहीं, जिसे किसी दिन इन दोनों पैरोंने नहीं नापा हो, फिर भी मेरे जैसे आवारोंके बादशाह संसारमें कम ही हैं।

'राजलक्ष्मी' कहाँ मिलेगी? यह सारी मनगढ़न्त कहानी है। श्रीकान्त उपन्यासके सिवा और कुछ नहीं है। उन निराधार अफवाहोंपर ध्यान नहीं देना चाहिए। कहानी क्या सच है? किसकी कहानी? तुम दोनों रहो दीर्घजीवी बनो बारम्बार यही आशीर्वाद देता हूँ। मेरे कहनेपर भी कभी स्वास्थ्यके प्रति भूलकर भी लापरवाही नहीं करना। तुम्हें देखा नहीं है, फिर भी न जाने क्यों तुम्हारे प्रति बड़ा स्नेह उत्पन्न हो गया है। यह शायद तुम्हारे नसीबकी बात है। मुझे ऐसा लग रहा है कि अगर ऐसा आलसी नहीं होता तो जाड़ेमें केवल तुमको देखनेके लिए कानपुर आता। लेकिन कभी यह होनेका नहीं यह भी जानता हूँ।

तुम्हारे दोनों बच्चोंको बहुत-बहुत आशीर्वाद देता हूँ। उन्हें माँ-बापका गुण मिल गया तो संसारमें सार्थक होंगे। लेकिन तुम्हें चौकस रहकर उन्हें आदमी

बनाना होगा। मर जानेसे काम नहीं चलेगा। ऐसा होनेपर मुझे भी शायद सचमुच ही बड़ा कष्ट होगा।—दादा

सच कहता हूँ कि तुम्हारी सिफारिशसे किसी चिट्ठीके सामने मुझे इस बेतरतीब चिट्ठी भेजनेमें शर्म आती है।

बाजे शिवपुर ७ मार्च, १९२९

परमकल्याणीयासु। तुम्हारी चिट्ठी मिली। कुछ कामकी बातें हैं। चूँकि मुझे बड़ी आशा थी। लेकिन वह 'दीदी'के अलावा और कुछ नहीं लिख सकी।

क्यों जानती हो? व्रत-व्रत जप-तप इत्यादिके पचड़ेकी आगमें उनके अन्दर जो मधुर था वह उसके साथ ही सूख गया। हाँ व्यतिरेक न हो तो हमारे घरोंकी कौन स्त्री है जो इन बातोंको कुछ कुछ नहीं करती! जाने दो। तुमसे मुझे द्वितीय आशा है। तुम्हारी जो उम्र है यही मनुष्यके रचना होनेकी उम्र है। इसीलिए मैं तुम्हें सिखा लेना चाहता हूँ। और इसीलिए ही तुम्हारी किसी रचनाको छपने देनेके लिए तैयार नहीं हुआ। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि अपनी रचना अपने नामसे छपे अक्षरोंमें देखनेकी साध बहुतोंको होती है। लेकिन यह भी जानता हूँ कि तुम एक साल सब्र करोगी।

लेकिन सिखानेकी वह सुविधा नहीं है। होना भी सम्भव नहीं है। फिर भी एक बार शायद उधर आऊँगा। वहाँ कहीं भी रहूँ तुमसे एक बार मुलाकात होना ही सम्भव है। तुम्हें लग सकता है कि इन्हींकी किताबें तो पढ़ती हूँ उन्हें पढ़कर भी अगर सीख नहीं सकती तो ये दो दिनमें सिखा कर ऐसा क्या खास बना देंगे। यह बात बिलकुल सच है। यथार्थमें वह सिखानेकी चीज भी नहीं है। फिर भी "यही जैन तुम्मीने मृत्युके समय उसका" " "इत्यादि इत्यादि।" मैं उपस्थित होता तो लिखनेके पहले तुम्हें यह कह देता कि जो तुम्मी मर गया है जो पूरी कहानीमें अब फिर नहीं आयेगा उसके सम्बन्धमें पहले ही जो पूर्वोक्त इतिहास पाठकोंको क्लान्त कर देता है। मैं होता तो कहाँसे शुरू करता यह कहनेके पहले यही कहना चाहता कि आरम्भ करना ही सबसे कठिन होता है। इसीपर प्रायः सारी पुस्तक निर्भर करती है।

मान लो अगर इस तरहसे शुरू होता—एक दिन तुलसीकी मृत देह श्मशानमें, रास्तेमें परिणत हो रही थी। उसकी तेरह सालकी लड़की मझरी निकट ही खड़ी थी। उसके मुँहपर निर्वाणोन्मुख चिन्ताकी दीप्त रश्मि न जाने कितनी देरसे विचित्र रेखाओंके लेख लिख रही थी किसीने ध्यान नहीं दिया। अचानक एक समय उसीपर तारा ठकुरानीकी दृष्टि पड़ते ही मानों वह चकित हो गई। लगा कि जिसके नश्वर देहकी अभी अभी समाप्ति हुई है वही मानों अकस्मात् अपने यौवनकी मूर्ति धारण किये खड़ी है। उसी तरहका अतुलनीय रूप उसी तरहका प्रशान्त माधुर्य मुँहपर मानों गहरे विषादकी छाया पड़ी हुई है। और इस सद्यः मातृहीनाके मुँहकी ओर देख-देखकर उसकी चिन्ताका सूत्र अतीतके कितने ही सुख-दुःखोंकी कहानियोंके अन्दरसे छाया-चित्रकी भाँति संचरण करने लगा। उसे याद आई उस दिनकी बात, जब तुलसीने पतिको खोकर बिलकुल निराश होकर पहले-पहल उसके घरमें पैर रखा था। उसके बाद किस प्रकारसे उसने अपने पूर्ण विकसित रूपके लावण्यको अश्रुओंकी मझरीसे बिलकुल गुप्त रो, उसकी छायी सी गृहस्थीमें सामर्थ्य भाने एक कर दिया इत्यादि

इस अतीतके इतिहासको जितने संक्षेपमें समाप्त किया जा सके करना आवश्यक है। क्योंकि इस बातको ध्यानमें रखना ही होगा कि पुस्तकमें वह फिर नहीं आवेगा अतएव उसके चरित्रको दिखानेकी अधिक आवश्यकता नहीं होती।

इसके बाद कहानी लिखनेमें पहले जिसे प्यार करते हैं उसके प्रति ही अतिरिक्त ध्यान देनेकी आवश्यकता नहीं। जो-जो लोग तुम्हारी पुस्तकमें रहेंगे पहले उनके चरित्रको अपने अन्दर स्थ कर लेना चाहिये। जैसे मान लो जिन्हें तुम अच्छी भाँति जानती हो तुम्हारे पिता या तुम्हारे पति। इसके बाद ये दोनों चरित्र अपने गुण-स्वार्थोंको लिये हुए किस मामलेमें निभा सकते हैं उसीको निश्चित कर लेना चाहिये। मान लो तुम्हारे पिता अपने कामोंके अन्दर, अपने मामले-मुकदमोंमें, तुम्हारे पति अपने मित्रकी नौकरीमें, उदारतामें, या स्नानमें, अच्छी तरह दुर्बलता प्राप्त कर सकते हैं केवल तभी कहानी खड़ी करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। नहीं तो पहिलेसे कहानीका प्लाट लेकर माथा-पच्ची करनेकी आवश्यकता नहीं होती। जिसे हाथी है उसकी कहानी भ्रम हो जाती है।

और भी बहुतसी छोटी-मोटी चीजें हैं, जिन्हें लिखनेके साथ-साथ जानी पड़े

बिना चिट्ठी लिखकर बताना कठिन है। इन्हींको तुम्हें किसी दिन बता जाऊँगा। लेकिन वह दिन कब आयेगा, इसे मेरे विधाता ही जानते हैं।" ... "मेरा अनगिनत आशीर्वाद लेना। —तुम्हारा दादा श्री शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

बाजे शिवपुर,
२४–११–१९

परम कल्याणीयासु। कल रातके साढ़े दस बजे दीदीके घरसे लौटनेपर आज सबेरे तुम्हारी और सरोजकी चिट्ठी मिली। उसकी चिट्ठी अंग्रेजीमें है। मैं अंग्रेजी नहीं जानता इसलिए अच्छी तरह समझ नहीं पाया। किसी विद्वान् दल मित्रके आनेपर पढ़ाकर बादमें जवाब दूँगा।

दीदीका श्राद्ध क्रिया-कर्म बड़े धूमधामसे किया गया। मैं दूसरे काममें व्यस्त था। उनके इलाकेमें इनफ्लुएन्जा बुखार बहुत ज्यादा है गरीब दुःखी कुछ कम नहीं मर गये हैं। दवाओंकी बन्दूक ले गया था, खुद केवल दोको ही मार सका और कुछ ठहर सकता तो और नहीं तो दो-तीन शिकार मिल जाते। बदकिस्मतीसे पस्त हो गया। (हवा और स्नान करके पथ्यकी कमीसे ही तुम्हारे *भगवान्‌के चरणोंमें उन्हें तेजीसे आसन मिल रहा है।*) फिर भी वापस आ गया था कुछ दवा आदि इकट्ठा करनेके लिए। मगर ऐसा लग रहा है कि अब सबेरेतक अपना ही बुखार काफी तेज हो जायगा। आज किसी तरह बचा हुआ है और इसी तरह बचा रहा तो परसों फिर जाऊँगा।

—तुम्हारा दादा।

बाजे शिवपुर (हवड़ा)
१०–१–१९२१

परम कल्याणीयासु ... वारिशाल कान्फ्रेन्समें जानेकी मेरी बड़ी इच्छा थी। पर अपनी नई पाठशालाके काममें इतना व्यस्त था कि जानेका समय नहीं मिला। अपनेको अब पहलेके परिचित सभी कामोंके बाहर खींच ले जानेकी चेष्टा

कर रहा हूँ। इसमें अनेक सांसारिक त्रुटियाँ अनेक प्रकारके दुःख-कष्टोंकी बातें पठित होंगी—उन्हें जाननेके लिए मन छुटपटा आया है। इसके अलावा इस जन्मे जीवनके आरम्भे कितनी ही गाँठें पड़ चुकी हैं। पर इतमीनानसे बैठकर उन्हें खोलनेकी उम्र अब नहीं है। इसलिए कुछ जल्दबाजी ही चल रही है।

शायद तुम्हारे पिताकी तबीयत आजकल अच्छी है। सरोजकी चिट्ठीसे ऐसा ही लगा।

मेरी खबर पहुँचा देनेके लिए तुम्हें लोग मिल ही जायँगे। अतएव इस विषयमें मैं निश्चिन्त हूँ। दादाका स्नेह और आशीर्वाद लेना। तुम लोग केवल इस बातके लिए प्रार्थना करो कि फिर विक्षिप्त न हो जाऊँ।

—तुम्हारा दादा

बाजे शिवपुर (हवड़ा)
२० जून १९२२

परमकल्याणीयासु,—लीला आज तुम्हारी चिट्ठी मिली। तुम्हें जवाब नहीं दे सका, वह केवल समयकी कमीके कारण ही। वैसे यथार्थमें ही इस समय मुझे जरा भी फुर्सत नहीं है। कांग्रेसका काम सार्थक हुआ तो फिर शायद समय मिले। आजकल मुझे निरन्तर दो वर्ष पहलेवाले महात्मा गान्धीके सत्याग्रहके दिन याद आते हैं।

मैं एक बार शिपर था। मेरे बगलका आदमी और सामनेके दस-पाँच जन सब 'जान गईं' कहकर गोली खा गिरकर मर गये। उस वक्त मैं भागा नहीं, मुझे लगी नहीं थी। कितनी ही बार आश्चर्य होता है कि उस दिन सार्जेन्टकी गोली क्यों नहीं लगी? आज लगता है उसकी भी आवश्यकता थी।' दादा

बाजे शिवपुर हवड़ा
१ जनवरी, १९२१

परम कल्याणीयासु। तुम्हारे और माया। कांग्रेसके समाप्त होनेके पहले ही

चला आया था, तबीयत बिल्कुल खराब हो जानेके कारण। सोचा था जानेके पहले ही तुम्हें चिट्ठी लिखूँगा, पर लिख नहीं सका। गया पहुँचकर वहाँ लिखनेकी सोची पर वह भी नहीं हुआ। अब लौटकर जवाब दे रहा हूँ। यह जो जब लिखूँ तब लिखूँ सोचता हूँ पर लिखता नहीं इसकी भी एक कीमत है, नितान्त तुच्छ बात नहीं है। लेकिन इस बातको कितने लोग समझते हैं। वे कहते हैं अपनी कीमत अपने ही पास रखो, हमारी अमूल्य चिट्ठीका जवाब देना उसीसे हमारा काम चल जायगा।

किसी समय मेरे बारेमें सभी कहते थे कि उसका शरीर बड़ी दया-मायाका है। और आज सभी यहाँ भाई भांजियाँ बन्धु-बान्धव कह रहे हैं कि उसकी देहको दया-माया छूतक नहीं गई है। मैं कहता हूँ इसकी भी कीमत है। वे कहते हैं कि उस कीमतसे हमें वास्ता नहीं तुम्हारी पहलेकी गैरकीमती वस्तु ही चाहिये। घरकी गृहिणीजीने उस स्वरमें स्वर मिलाया है। शायद उनका स्वर और सभी स्वरोंसे ऊँचा है।—दादा

बाजे शिवपुर, हवड़ा,
१ मई, १९२२

परमकल्याणीयासु! कई दिन हुए मेरे ऊपर एक दुर्घटना पड़ी है। एकमात्र बैंकमें यथासर्वस्व था अचानक बैंकके फेल हो जानेसे लगता है सब-कुछ डूबा। मकान खतम हुआ। तालाब खतम नहीं हुआ। सोचा था इस साल कुछ भी नहीं रख छोड़ूँगा, सब कुछ समाप्त करूँगा। पर पूँजीके समाप्त होनेसे सब-कुछ स्थगित रहा। लेकिन यह भी तो कुछ कम विपत्ति नहीं है कि कितनोंहीने मेरे मार्फत अपना यथासर्वस्व मेरे ही बैंकमें इस विश्वासमें जमा रखा था कि मैं कभी उन्हें धोखा नहीं दूँगा। अब इन्हें पाई-पाई चुकता कर देना होगा। बहुतेरे परिवारोंका भार मेरे ही कन्धोंपर था। समझमें नहीं आता उनका क्या करूँगा। लेकिन यह बात निश्चित है कि मेरे बन्द कर देनेसे उनका चूल्हा नहीं जलेगा। भगवान् अगर देते हैं तो वह दूसरी बात है। सोच रहा हूँ दो-तीन
ही जाकर दिन-रात परिश्रम कर देखूँ कि कमसे कम पाँच-छ हजार रुपये

क्षमा करूँ। हो सकता है सँभाल ना सकें, सम्बन्धियोंके परिवारोंको लेकर बड़ी चिन्ता है।

तुम्हारा दादा

बाजे शिवपुर (हवड़ा)
१७ मई १९२१

परमकल्याणीयासु। कुछ समय यहाँ नहीं था। तीनेक घटे हुए बारिसालसे पर लौटने पर तुम्हारा पोस्ट-कार्ड मिला, इसीलिए ठीक समयपर चिट्ठीका जवाब न दे सका।

तुमकी लेखमें हमारे कवि काजी नजरुल इस्लाम अनशन करके मरणासन्न हैं। एक बजेकी गाड़ीसे जा रहा हूँ, देखूँ अगर मुलाकात करने दें और देनेपर मेरे अनुरोधसे अगर वह फिर खानेके लिए राजी हों। न होनेसे उनके लिए आशा नहीं देखता हूँ। वे एक सच्चे कवि हैं। रवि बाबूको छोड़कर शायद इस वक्त इतना बड़ा कवि दूसरा नहीं। —दादा

सामताबेड़, पानित्रास पोस्ट
जिला हवड़ा, १२ कार्तिक १३३१

परमकल्याणीयासु। तीका तुम्हारी चिट्ठी मिली। इसी तरह बीच-बीचमें अपना कुशल समाचार देना।

मेरे मँझले भाई प्रभास संन्यासी थे, शायद तुमने सुना होगा। वह कुछ दिन पहले दर्मासे लौटकर मंगलवारकी रातको बीमार पड़े। निरन्तर कहने लगे—बारम्बार बीमारीसे यह शरीर शिथिल हो गया है, इस छोड़ देनेकी ही आवश्यकता है। अगले दिन एक बजे मर और बिस्तर छोड़कर खुद बाहर आए और मेरी छातीपर सिर रखकर शरीर त्याग कर दिया, दीनी, मैं बहू और प्रकाश भर थे —दादा

११

[श्री हरिदास शास्त्रीको लिखित]

बाजे-शिवपुर हवड़ा
१८-१-२५

तुम्हारी चिट्ठी पढ़ी। इस बार काशीकी इतने लोगोंकी भीड़में केवल तुम्हीं आत्मीय से लगे। पर तुम्हारे बारेमें कुछ भी नहीं जानता। इस पत्रको पढ़नेमें कुछ समय नष्ट अवश्य हुआ। पर समय क्या केवल प्रहर, दण्ड पल, विपल ही है? इसके सिवा और कुछ नहीं? उस दृष्टिसे तुम्हें इस लम्बे पत्रके लिखने और मेरे पढ़ने तथा जाँचनेमें कुछ भी नष्ट नहीं हुआ, बल्कि संचय ही हुआ।
नारियोंके लिए २२ से २५ के बीचकी उम्र खतरनाक होती है। क्योंकि २२ २३ के बाद जब यथार्थका प्रेम जाग्रत होता है तब केवल आध्यात्मिक प्यारसे इसकी सारी क्षुधा नहीं मिटती। लेकिन यह तो हुआ एक पक्ष—शारीरिक पक्ष, किन्तु एक दूसरा पक्ष भी है—और वही चिरकालकी मीमांसाविहीन समस्या है। संसारमें साधारणतः ऐसा नहीं होता पर किन दो-चार व्यक्तियोंके भाग्यमें होता है उनके समान भाग्यवान् भी नहीं और अभागे भी नहीं। इनके दुर्भाग्यसे ही काव्य-जगत्का सारा माधुर्य संचित हो उठा है' पर इतना बड़ा सत्य भी दूसरा नहीं है—

'सुख दुख दुटी भाई—
सुखेर लागिया जे करे पीरिति दुख जाय तार ठाँई।"

समाजमें जिसे गौरव प्रदान नहीं किया जा सकता उसे केवल प्रेमके द्वारा ही सुखी नहीं किया जा सकता। मर्यादाहीन प्रेमका ज्वार शिथिल होते ही दुर्निवार हो जाता है 'इसके अलावा केवल अपनी ही बात नहीं अपनी सन्तानकी बात सबसे बड़ी है। उनके कन्धोंपर दूसरेका बोझ लाद देनेकी क्षमता बहुत बड़े प्रेममें भी नहीं है।' एक बात।—अन्याय प्यार करनेसे स्त्रियोंकी शक्ति और साहस पुरुषसे कहीं अधिक है। वे कुछ भी नहीं मानतीं। पुरुष जहाँ भयसे विह्वल हो जाते हैं, स्त्रियाँ वहीं दाँत बाँध उच्च स्वरसे घोषणा करनेमें

दुविधा नहीं करतीं।' समाजके अविचार अत्याचारका जो पहले प्रतिकार करता है उसीको दुख भोगना पड़ता है।

ई १९२५

कहा जाता है कि सच्चे प्यारके लिए संसारमें दुख भोगना पड़ता है। कोई न करे तो समाजके बेतुके अन्यायका प्रतिकार कैसे होगा? समाजके विरुद्ध जाना और धर्मके विरुद्ध जाना एक बात नहीं है। इस बातको ही लोग भूल जाते हैं। —(आहाना, वैसाख १३४६)

१२

[श्री अक्षयचन्द्र सरकारको लिखित]

प्रियवर, हमारे उपन्यासोंको नाटक बनाकर अभिनय करनेके सम्बन्धमें साधारण नियम इतना ही है कि वह नाटक छपाया नहीं जा सकेगा और कोई व्यापारी थियेटरवाला उससे अर्थोपार्जन नहीं कर सकेगा। यदि यह न हो तो शौकसे अभिनय करने और उसके लिए टिकट बेचनेमें मेरी कोई मनाई नहीं है। मुझे 'दत्ता' उपन्यासका एक नाटक दूसरेसे मिला है। स्वयं ही कुछ-कुछ रद्दोबदल करके 'विजया' नामसे उसे 'स्टार थियेटर को देना सोचा है। मेरे उपन्यासोंमें दोष यह है कि नाटक बनानेके लिए उन्हें अनेक स्थानोंपर नये सिरेसे लिखना पड़ता है।

बाहरके लोगोंके लिए कठिनाई यह है कि वे नये सिरेसे तो कुछ दे नहीं सकते। केवल पुस्तकमें जो बातें हैं उन्हींको उलट-फेर कर कुछ खड़ा करनेके लिए बाध्य होते हैं। इसीलिए प्रायः देखता हूँ अच्छे नहीं होते।

आपका—शरत् बाबू (मासिक वसुमती माघ १३४४)

१३

[श्री दिलीपकुमार रायको लिखित]

सामताबेड़, पो० पानित्रास,

जिला हवड़ा

२९ माघ, १३३३

मण्टूराम, तुम्हारी पुस्तक और छोटी चिट्ठी मिली। एक रात दिनमें पुस्तकको पढ़कर समाप्त किया। बहुत अच्छी लगी। लेकिन दो एक त्रुटियाँ भी हैं। भारतके बड़े-बड़े गाने-बजानेवालोंमें अपना नाम न देखकर कुछ खिन्न हुआ। लेकिन निश्चित रूपसे जानता हूँ यह गलती तुम्हारी इच्छाकृत नहीं है। असावधानी-के कारण ही हो गई है और भविष्यमें इसे तुम सुधार दोगे इसके बारेमें मुझे लेश मात्र संदेह नहीं है। सुधार देना भूलना मत। रायबहादुर मजुमदार महाशयके 'राधा बना मूये मूये मूये' का उल्लेख कहाँ है? वह भी चाहिये। क्योंकि मेरा विश्वास है कि वह छिन्न हुए हैं। यह तो हुई पुस्तककी त्रुटिकी बातें। एक मत भेदका विषय भी है। तुमने पूजनीय रविबाबूका एक कथन उद्धृत किया है कि "सर्वसाधारणको हम अवज्ञा करते हैं, इसीलिए उनकी निमन्त्रण-सभामें बाहरके आँगनमें उनके लिए पूड़ी-दहीकी व्यवस्था करते हैं, और 'सन्देशों'को बचा रखते हैं उनके लिए जिन्हें कि बड़े आदमी कहते हैं।" बात सुननेमें अच्छी है और जिन्होंने लिखा है उनकी मानसिक उदारता और निरपेक्षता भी यथार्थमें प्रगट होती है। किन्तु वास्तवमें इतना बड़ा गलत कथन दूसरा नहीं। छिः, सभ्यता और सत्कारके लिए 'सन्देश' ही चाहिये अगर पूड़ी-दही खिलाते हो, तो पेटकी पीड़ासे वह परेशान होगा। और सर्वसाधारणके मानी हैं छोटे लोग और वे पूड़ी पसन्द ही करते हैं। एक उदाहरण लो। थोड़े-से सर्वसाधारण पैसेवालोंने तुम जैसे दो-चार व्यक्तियोंका प्रश्रय पाकर आजकल रेलगाड़ीके तीसरे दर्जेको छोड़ अचानक दूसरे दर्जेमें चढ़ना शुरू किया है। अथवा किसी दर्जेमें इनमेंके दो-तीन जनोंको तीन-चार पैसे बिना रखनेपर देखा है क्या तमाशा

होता है। तब किसकी हिम्मत और प्रवृत्ति होती है कि उस कमरेका व्यवहार करे ? एक टोकरी मिट्टीसे लेकर चनेकी घुँघनी, पकौड़े कसार तीर्थ-सलिल उस दृश्यको जिसने देखा है, वह क्या कभी भूल सकता है ? बात यह है कि अन्दर सोनेके घरमें बैठकर सन्देश खानेकी भी एक योग्यता है उसे अर्जन करना होता है, इस बातको संसारके सभी देशोंके बड़े बड़े चिन्ताशील व्यक्तियोंने कहा है। तुम भी स्वीकार किया करते हो। नहीं तो अन्दरका दरवाजा खुला पाकर 'बाहरी आदमियों' लोग हल्ला मचाकर कहीं घुस पड़े तो हम क्या जिन्दा रह सकेंगे, अतएव इस तरहकी खतरनाक अति उदार बात फिर कभी नहीं कहना।

तुम्हारे कन्टाईमें नहीं आ सका क्योंकि शरीर जरा अस्वस्थ था। दूसरा कारण यह है कि मेदिनीपुरमें प्रतिवर्ष कहीं न-कहीं बाढ़ आयगी ही। आना अनिवार्य है। सरकारने कोई प्रतिकार नहीं किया और न करेगी। पर बाढ़ देखकर एक स्थायी टैक्स बन गया है। इस प्रकारसे हर साल बाढ़ पीड़ितोंकी सहायता करनेमें कौन-सी सार्थकता है। सरकारको एक बात बारसे नहीं कहेंगे, एक पक्का मिस्त्री सीखकर, रेलकी सड़क काटकर पानी नहीं निकाल देंगे,—कहीं साहब पकड़कर जेल न भेज दे। वे जानते हैं कि कलकत्तेके भद्र लोगोंका यह महान् कर्तव्य है कि उन्हें खाना-कपड़ा दें। क्योंकि उनके घर-द्वारमें पानी आ घुसा है। इसके अलावा पचासके हिसाबमें भी लोग दलबद्ध होकर क्यों बसते हैं जानते हो ? केवल इसीलिए कि बरसमें उनके घर-द्वार बह जानेपर पश्चिम बंगालके भद्र लोग उन्हें रुपया देंगे। केवल परेशान करनेके लिए वह ऐसी भयंकर बाढ़में आ बसे हैं। इसके अलावा और कोई उद्देश्य नहीं है। मैं निश्चित रूपसे जानता हूँ कि इस विषयमें तुम्हारे अन्दर किसी प्रकारके मतभेदकी आशंका नहीं। क्योंकि तुम बुद्धिमान् हो। जो सच्ची बात है उसे समझोगे ही।

अखबारमें देखा है कि तुम विलायत जा रहे हो। आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारी यात्रा निर्विघ्न और उद्देश्य सफल हो। मेरी उम्र हो गई है। लौटनेपर अगर मुलाकात न हो तो इस बातको याद रखना कि मैं तुम्हारी चिरदिन शुभ-कामना करता रहा। आशा है तुम कुशल हो।

श्री शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

१३

[श्री दिलीपकुमार रायको लिखित]

सामताबेड़ पो० पानित्रास,
जिला हवड़ा
२२ माघ, १३३३

मण्टूराम, तुम्हारी पुस्तक और छोटी चिट्ठी मिली। एक रात दिनमें पुस्तकको पढ़कर समाप्त किया। बहुत अच्छी लगी। लेकिन दो एक त्रुटियाँ भी हैं। भारतके बड़े-बड़े गाने-बजानेवालोंमें अपना नाम न देखकर कुछ खिन्न हुआ। लेकिन निश्चित रूपसे जानता हूँ यह गलती तुम्हारी इच्छाकृत नहीं है। असावधानीके कारण ही हो गई है और भविष्यमें इसे तुम सुधार लोगे इसके बारेमें मुझे कोई सन्देह नहीं है। सुधार देना भूलना मत। रायबहादुर मजूमदार महाशयके 'राधा बना भूले भूरी भूले' का उल्लेख क्यों है? यह भी चाहिये। क्योंकि मेरा विश्वास है कि वह भिन्न हुए हैं। यह तो हुई पुस्तककी त्रुटिकी बातें। एक मत भेदका विषय भी है। तुमने पूजनीय रविबाबूका एक कथन उद्धृत किया है कि "सर्वसाधारणको हम श्रद्धा करते हैं, इसीलिए उनको निमन्त्रण-सभामें बाहरके आँगनमें उनके लिए चूड़ा-दहीकी व्यवस्था करते हैं और 'सन्देशों' को बचा रखते हैं उनके लिए जिन्हें कि बड़े आदमी कहते हैं।" बात सुननेमें अच्छी है और जिन्होंने लिखा है उनकी मानसिक उदारता और निरपेक्षता भी पदपदमें प्रगट होती है। किन्तु वास्तवमें इतना बड़ा गलत कथन दूसरा नहीं। शिक्षा, सभ्यता और कलाके लिए 'सन्देश' ही चाहिये अगर चूड़ा-दही खिलाते हो, तो पेटकी पीड़ासे वह परेशान होगा। और सर्वसाधारणके माने हैं छोटे लोग और वे चूड़ा-दहीपर ही पलते हैं। एक उदाहरण लो। थोड़े-से सर्वसाधारण पैसेवालोंने तुम जैसे दो-चार व्यक्तियोंका प्रश्रय पाकर आजकल रेलगाड़ीके तीसरे दर्जेको छोड़ अचानक दूसरे दर्जेमें चढ़ना शुरू किया है। अक्सर किसी डब्बेमें इनमेंसे दो-तीन व्यक्तियोंको तीन चार घण्टे बिठा रखनेपर देखा है क्या तमाशा

होता है। तब किसकी हिम्मत और प्रवृत्ति होती है कि उस कामेका व्यवहार करे। एक टोकरी मिट्टीसे मेकर, घनेकी पुँछनी पकोड़े ब्यापार तीर्थ-सहित उस हाथको जिसने देखा है, वह क्या कभी भूल सकता है! बात यह है कि अन्दर सोनेके घरमें बैठकर सन्तोष पानेकी भी एक योग्यता है उसे अर्जन करना होता है इस बातको हमारे सभी देशोंके बड़े-बड़े चिन्ताशील व्यक्तियोंने कहा है। तुम भी स्वीकार किया करते हो। नहीं तो अन्दरका दरवाजा खुला पाकर 'बाहरी आँगनके' लोग हल्ला मचाकर कहीं घुस पड़े तो हम क्या किन्हा रह सकेंगे अतएव इस तरहकी खतरनाक अति उदार बात फिर कभी नहीं कहना।

तुम्हारे अन्दरमें नहीं आ सका क्योंकि शरीर जरा अस्वस्थ था। दूसरा कारण यह है कि मेदिनीपुरमें प्रतिवर्ष कहीं-न-कहीं बाढ़ आयगी ही। आना अनिवार्य है। सरकारने कोई प्रतिकार नहीं किया और न करेगी। पर बाढ़ देशपर एक स्थायी देवस बन गयी है। इस प्रकारसे हर साल बाढ़ पीड़ितोंकी सहायता करनेमें कौन-सी सार्थकता है! सरकारको एक बात जोरसे नहीं कहेंगे, एक अथवा मिट्टी खोदकर, रेलकी सड़क काटकर पानी नहीं निकाल देंगे,—कहीं साहब पकड़कर जेल न भेज दें! वे जानते हैं कि कलकत्तेके भद्र लोगोंका पर महान् कर्तव्य है कि उन्हें खाना-कपड़ा दें। क्योंकि उनके घर-द्वारमें पानी आ घुसा है। इसके अन्यथा पत्थरके दिवारेमें भी लोग इकट्ठा होकर क्यों मरते हैं जानते हो! केवल इसीलिए कि बाढ़में उनके घर-द्वार बह जानेपर पश्चिम बंगके भद्र लोग उन्हें रुपया देंगे। केवल मोहपान करनेके लिए वह ऐसी भयंकर जगहमें आ बसे हैं। इसके अन्यथा और कोई उद्देश्य नहीं है। मैं निश्चित रूपसे जानता हूँ कि इस विषयमें तुम्हारे अन्दर किसी प्रकारके मतभेदकी आशंका नहीं। क्योंकि तुम बुद्धिमान् हो। जो सच्ची बात है उसे समझोगे ही।

अखबारमें देखा है कि तुम विलायत जा रहे हो। आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारी यात्रा निर्विघ्न और उद्देश्य सफल हो। मेरी उम्र हो गई है। लौटनेपर अगर मुलाकात न हो तो इस बातको याद रखना कि मैं तुम्हारी चिरदिन शुभ-कामना करता रहा। आशा है तुम कुशल हो।

श्री शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय

पुनश्च—अगले ११ मार्चको ५ बजे ही जाऊँगा। पहले कार्तिकका तुम दोनोंसे मिलनेके लिए कलकत्ते जाऊँगा।

सामताबेड़, पानित्रास पोस्ट (हवड़ा)
५ फाल्गुन १३३३

परमकल्याणीयेषु। मन्टू, तुम्हारी चिट्ठी और टिकट दोनों मिल गये। कलकत्ते जानेके लिए समय नहीं था। क्योंकि जब तुम्हारी चिट्ठी मिली, तब जाया नहीं जा सकता था। सुरेनकिशोरको तुम्हारे विदाईके उत्सवमें निमन्त्रित होनेकी बड़ी इच्छा थी लेकिन इधर बंगाल-नागपुर रेलवेमें हड़ताल चल रही है। गाड़ियोंका एक तरहसे पता ही नहीं है। जो भी हैं सात आठ घंटेसे कममें हवड़ा नहीं पहुँचतीं। और न भी गया तो क्या हुआ! आँखोंसे देखने और कानोंसे सुननेकी ऐसी कौन सी जरूरत है! यहींसे हृदयसे आशीर्वाद देता हूँ। तुम्हारा पथ निर्विघ्न हो और तुम्हारी यात्रा सार्थक हो।

मैं बहुत अच्छा नहीं हूँ। शरीर निरन्तर क्षीण और शिथिल होता जा रहा है। तुम्हारी दोनों पुस्तकें बड़े ध्यानसे पढ़ीं। मगर 'पथ'का अन्तिम हिस्सा बहुत ही मधुर है। हृदयकी सहानुभूतिसे जिस संसारको देखना सीखा है उसके बारेमें लिखनेके अन्दर कितनी व्यथा कितना आनन्द संचित हो जाता है, उसे इस पुस्तकके पढ़नेसे जाना जा सकता है।

तुम सदा ही व्यस्त रहते हो। तुम्हारे पास समयकी कमी रहती है। लेकिन इस बार लौटकर तुम्हें लिखनेकी ओर जरा ध्यान देना होगा। लेखन-कार्यमें जो शिल्प-कौशल और कला है उसे जरा और यत्नसे तुम्हें आयत्त करना होगा। केवल लिखना ही नहीं भाई न लिखनेकी विद्याको भी सीखना चाहिये। तब उच्छ्वासित हृदय जिस बातको मुखरतासे कहना चाहता है वही शान्त संयत होकर जरा-से गंभीर इशारेसे ही सम्पूर्ण हो जाता है। बीच-बीचमें यह चेतना तुम्हें आई है और बीच-बीचमें तुम आत्म-विस्मृत हो गये हो। अर्थात् पाठकोंका समूह इतना नासमझ है कि पदयोजनकी सीढ़ी पार करके स्वर्ग भी नहीं जाना

चाहता अगर उसे ज़रा-सी कलाबाज़ी करके नरक पहुँच जानेका रास्ता मिल जाय। इस बातको याद रखना रचनाके लिए सबसे बड़ा कौशल है।

मेरा स्नेह आशीर्वाद लेना।

—तुम्हारा श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

सामताबेड़ पानित्रास पोस्ट,
जिला हवड़ा
११ फाल्गुन १३३१

परमकल्याणवरेषु। मन्टू, तुम्हारी चिट्ठी पाकर कितनी खुशी हुई यह तुम्हें भी बतलाना कठिन है। तुम मुझे श्रद्धा करते हो प्यार करते हो इसे भी अगर नहीं समझूँगा तो इस संसारमें और क्या समझूँगा!

तुम्हारे विदाके अभिनन्दनमें जो लोग सम्मिलित हुए थे उनके मुँहसे क्या क्या हुआ सब सुना है। तुम विदेश जा रहे हो मगर ज़रा जल्दी लौटना। तुम निकट नहीं हो यह याद आते ही मनको कष्ट पहुँचता है।

'मनेर परश'का अन्तिम अर्थात् तीसरा हिस्सा मुझे कितना अच्छा लगा था यह नहीं बतला सकता। लक्ष्मी प्रभा और दु लकी अन्तरसे सारे संसारके लोग एक-दूसरेके कितने अपने हैं यह न जाने कितने सहज भावसे तुम्हारी पुस्तकके अन्तमें निखर उठा है। इसीलिए मुझे निरन्तर लगता था कि तुम शायद किसीके यथार्थ जीवनके दुःखकी कहानी लिपिबद्ध कर गये हो। लेकिन इसे लिपिबद्ध करनेके कौशलको तुम्हें ज़रा और यत्नसे सीखना होगा। तुम्हारे पिताको नहीं जानता था परन्तु उनके अन्तरंग मित्रोंसे सुनता हूँ कि उनमें मनुष्यकी वेदना समझनेकी अनुभूति बड़ी उच्च कोटिकी थी। शायद यही तुम्हें उत्तराधिकारमें मिली है। तुम्हें इस वस्तुको हृदयमें दिन-रात जतन करके पूर्ण मनुष्य बनाना होगा। तभी सब ठीक होगा।

अच्छी बात है मेरी चिट्ठीमेंसे जितना चाहो प्रकाशित कर सकते हो। अनुमति देता हूँ।

तुम मेरे अतिशय स्नेहके हो। आजकल नहीं बहुत दिनोंसे इष्ट-मित्रोंके साथ मेरे घर आकर शोरगुल मचाकर जब पूरी खा जाते थे तबसे।

तुम्हें समग्र हृदयसे आशीर्वाद देता हूँ कि इस जीवनमें सफल बनो नीरोग बनो, दीर्घजीवी बनो। —आशीर्वादक शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

सामताबेड़ पानित्रास पोस्ट
माघ १११५

परमकल्याणीयेषु। मण्टू, बहुत दिनोंसे तुम्हारी चिट्ठीका जवाब नहीं दे सका। तुम बहुत क्रुद्ध हुए होगे। उस दिन तुम्हारे थियेटर देखनेके बाद घरपर गया था। न तो तुम थे और न तुम्हारे मामा तक ही। साहबका घर है, इन्तजार करना उचित था कि नहीं यह निश्चय नहीं कर सका। मेरे साथ जो सज्जन थे वे कुशल व्यक्ति हैं। कामकाजके सिलसिलेमें वह साहबोंके यहाँ जाया करते हैं। उन्होंने कहा कि कार्ड रख जानेका ही कायदा है—ठीक जाकर बैठे रहनेसे वे क्रुद्ध होते हैं। लेकिन कार्ड न रहनेके कारण हम चुपचाप लौट आए।

कल भी बहुत रात तक तुम्हारी 'दो धारा'के कितने ही अध्यायोंको फिर पढ़ गया। यथार्थमें पुस्तक बहुत अच्छी है। अवहेलना करके जैसे-तैसे पढ़ जानेकी वस्तु नहीं है मन लगाकर पढ़नेके योग्य है। लेकिन जानते तो हो, आजकल प्रशंसा-पत्रका मूल्य नहीं है। क्योंकि जिनके लिए बातकी कीमत है वही इसकी अमर्यादा करते हैं। इसीलिए अचानक बात नहीं करता। लेकिन जो लोग मेरी बातपर विश्वास करते हैं उन सभीसे कहता हूँ कि मण्टूकी इस पुस्तकको श्रद्धाके साथ शुरूसे आखिरतक पढ़ देखो। मेरा अपना तो पढ़ा ही गया है, फिर इसमें ऐसी बहुत-सी बातें हैं जिनके बारेमें मैंने भी इसके पहले सोचकर नहीं देखा है।

'भारतवर्ष' (जेठ, १११) में तुम्हारी 'चाकर' कहानी पढ़ देखी। कहानीके हिसाबसे वह उतनी अच्छी नहीं बनी है लेकिन देखा है कि तुम्हारे अन्दर एक चीजका सुन्दर विकास हुआ है और वह है हास्यरस। कहानी लिखनेका कौशल या पद्धति और हास्यरसकी धारा दोनों—तुम्हारे अन्दर जिस दिन एक हो जाएगी उस दिन तुम सचमुच ही बड़े साहित्यिक हो जाओगे। एक बात मत भूलना मण्टू। रचनामें विनोद लाना जितना कठिन है उतना ही उसमें न बिगड़कर रुक पाना भी कठिन है। लेकिन यह बात किसीको सिखाई

नहीं जा सकती अपने आप सीखनी पड़ती है। मैं निश्चित रूपसे जानता हूँ कि इसे सीखनेमें तुम्हें देर नहीं लगेगी। आज जो लोग तुम्हारी खिल्ली उड़ाते हैं, वही एक दिन खुलेआम न हो, मन ही मन इस सत्यको स्वीकार करेंगे। मेरे जानेके दिन निकट आ रहे हैं, लेकिन उतने दिनोंके बाद भी अगर मुझे भूल नहीं गए तो मेरी यह बात तुम्हें याद आ जायगी।

अ० ने के निबन्धोंको पढ़ा। नवागतके लिखे हुए हैं इनके भले-बुरेके विचार करनेका समय नहीं आया है। उसके साथ आडम्बरके आतिशय्योंके दूर होनेसे इसका लिखना शायद अच्छा ही होगा। अल्पवयस्कका एक बड़ा भारी दोष यह है कि बहुत-सी पुस्तकें पढ़ जानेका अभिमान इन लोगोंपर सवार हो जाता है। इस-लिए अपनी रचनामें अपना कुछ भी नहीं रहता रहती है केवल रटी हुई दूसरोंकी बातें। और रहती है कारण-अकारण जहाँ-तहाँ घुसेड़ी हुई विद्याकी आलोचना। लड़कीको तुम इतनी जल्दी लिखनेके लिए मना करना। लिखनेमें धीमता बुद्धि-की योग्यता है, केवलकी नहीं, यह बात भूलना नहीं चाहिये। कम उम्रमें कहानी लिखना अच्छा कविता लिखना और भी अच्छा। किन्तु समालोचना लिखने बैठना अन्याय है। चाहे उपन्यासपर हो चाहे नारीके ऊपर हो।

'शरच्चन्द्र और गाल्सवर्दी' निबन्ध पढ़ा। गाल्सवर्दीका केवल नाम ही सुना है, उनकी कोई पुस्तक नहीं पढ़ी। अतएव उनमें और मुझमें कहाँ समानता है और कहाँ नहीं है कुछ भी नहीं जानता। निबन्धमें मेरी प्रशंसा है और गाल्सवर्दीके ढेरके ढेर उद्धरण हैं। इससे मैं कुछ भी नहीं समझ सका। केवल यही समझा कि अ० ने उनकी पुस्तकें पढ़ी हैं और गाल्सवर्दी महाशय कोई भी क्यों न हों बहुत-सी अच्छी-अच्छी बातें कह गए हैं और उन्हें जाननेसे ज्ञान उत्पन्न होता है।

लड़की जीवनमें सुखी नहीं है इस बातको सुनकर क्लेश होता है। लेकिन इस समाजमें नारी जन्मका ऐसा अभिशाप है कि इससे छुटकारेका रास्ता ही नहीं। लड़कीकी रचनाएं पढ़कर लगता है बहुत बुद्धिमती है। किन्तु जीवनमें उसके साथ-साथ जो वस्तु मिलती है उसका नाम है अनुभव। केवल पुस्तकें पढ़ कर इसे नहीं पाया जा सकता। और न पानेतक इसका मूल्य नहीं मालूम होता। लेकिन इस बातको भी याद रखना चाहिये कि अनुभव, दूरदर्शिता आदि केवल शक्ति प्रदान ही नहीं करते शक्तिका ह्रास भी करते हैं। इसलिए कम उम्र रहते

अभ्यसूल अच्छा न हुआ। तुम्हारे 'बामन'का मामला भी विलायतका है। उस दिन कई अध्याय पढ़े। उसमें स्पर्शकी भक्ति-विह्वलता अकारण अर्थहत विवरणका घटाटोप नहीं है। लगता है वह भी तो विलायत गया है लगता भी बहुत-कुछ है, लेकिन बदलनेके लिए बेचैनी नहीं है। इतना-सा सर्वदा ही याद रखना मन्टू। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि एक दिन तुम बड़े होगे। वे किसीके सम्बन्धमें अगर कोई चुनौती देकर कहता है कि रचनामें बेचैनी कहाँ है दिखाओ तो शायद हमें उत्तरमें यही कहना होगा कि इन चीजोंको इस तरह नहीं दिखाया जा सकता, रसिक पाठकोंका मन अपने आप अनुभव करता है। श्रीमती अ० देवीके उपन्यासमें देखोगे वेद-वेदान्त, उपनिषद् पुराण, कालिदास, भवभूति सभी पुस्तकें लिये देखभेख मचा रहे हैं। हरेक पंक्तिमें ग्रन्थकारका यह मनोभाव पकड़में आता है कि तुम सब लोग देखो मैं कितनी विदुषी हूँ कितनी पढ़ी लिखी हूँ, कितना जानती हूँ। इस अतिरेकको किसी भी तरह प्रश्रय न मिलना चाहिए। लेकिन बड़े भाव, बड़े तत्त्व, बड़ा आइडिया, बड़ी भावना इन्हें लेकर चलना होगा जीवनमें भी और साहित्यमें भी। पानी बरसता है पत्ता हिलता है लाल फूल और काला जल, देवरानी-जेठानीमें झगड़ा बहू-बहूमें मनोमालिन्य या प्रमाद युवतीके यमनकी निपुणता —घरमें कितनी आलमारियाँ कितने सोफे, दीपमें कितनी बत्तियाँ और अलगनीपर कितनी और किस किनारकी चुनी हुई साड़ियाँ इन सबके दिन बीत गए प्रयोजन भी समाप्त हो गया। यह केवल लिखनेके बहाने साहित्यको ठगना है। तुम यह सब नहीं करते हो इसे मैंने लक्ष्य किया है। इसने और दूसरे बहुत से कारणोंसे तुम्हारी रचनामें आजकल मुझे बहुत आशा होती है और बल मिलता है परन्तु मनमें वेदना-बोध भी करता हूँ कि इसे तुमने छोड़ दिया। आश्रममें रहकर इस चीजको कभी नहीं किया जा सकता। जीवनमें जिसने प्यार नहीं किया कलंक मोल नहीं लिया दुःखका बोझ नहीं ढोया उसकी अनुभूतिका अनुभव आहरण नहीं किया उसकी दूसरेके मुँहसे लिए गये स्वाद-सी कल्पना सच्चे साहित्यकी सामग्री कबतक बनेगी! नाक-दबाये प्राणायामके योगासन और कुछ भी क्यों न हो वह वस्तु नहीं हो सकती। जिसका अपना ही जीवन नीरस है गंगाजलकी बाल-विधवाकी तरह पवित्र है वह प्रथम जीवनके आवेगसे जितना भी करे, दो दिनमें सब कुछ मरु-भूमिकी तरह शुष्क श्रीहीन हो

उठेगा। भय होता है धीरे-धीरे शायद तुम्हारी रचनामें भी असंगति दिखाई पड़ेगी। सबसे बढ़िया रचना वही है जिसे पढ़नेसे लगे कि ग्रन्थकार अपने अन्तर से सब कुछको बाहर फूलकी भाँति खिला रहा है। ऐसा नहीं है मेरी सारी पुस्तकोंके के नायक-नायिकाओंको लोग समझते हैं कि शायद यही ग्रन्थकारका अपना जीवन है अपनी बात है। इसीलिए सज्जन-समागममें अपांक्तेय हूँ। लोगोंकी जबानी न जाने कितनी जनश्रुतियाँ चल पड़ी हैं। अपनी बात रहने दूँ। तुम्हारी बात एक दिन सोची थी कि मन्टू बैरिस्टर बनके नहीं आया यह अच्छा ही हुआ। उसने ढेरों रुपए नहीं कमाए, मोटरकारपर नहीं चढ़ा हाई-कोर्टका स्तम्भ नहीं बना तो क्या हुआ। इसकी कमी नहीं। जितना है उतनेमें चल जायगा,—केवल साहित्य और संगीतके जरिए मन्टू देशको बहुत-कुछ दे जायगा। यह निरानन्द देशके लिए आनन्दका भोज है—यही हमारे लिए बहुत है। मैं और एक बात सोचा करता था। मन्टू देश-देशमें घूमा करता है। वह अनेक जातियों अनेक समाजों अनेक लोगोंके साथ बंगालका एक स्नेह और श्रद्धाका बन्धन प्रस्तुत कर रहा है। उसे सभी पहचानते हैं सभी प्यार करते हैं। मन्टूके साथ जानेसे कहीं भी आदरकी कमी नहीं होगी। लेकिन उस आशा उस आनन्द पर पानी पड़ गया। जिसके शरीरकी मनके आनन्दकी स्वाभाविकताकी स्वत स्फूर्तताकी सीमा नहीं थी उसने आज साधनाका ऐसा पट्टा लिखा दिया कि एक पैर बढ़ानेके लिए भी उसे अनुमति चाहिये। यही है उसकी मुक्तिकी साधना। देश गया रह गया उसका काल्पनिक स्वार्थ और वही उसके लिए बड़ा हो गया। मैंने भी बहुत पढ़ा है, बहुत देखा है बहुत-कुछ किया है—इस बातको मैं भी तो नहीं भूल पाता। इसीलिए जो कोई कुछ करता है उसे मान लेनेमें द्विधा होती है। लेकिन इस बातको लेकर बहस निष्फल है। मेरे बचपनकी एक बात सदा याद रहेगी। मामाके संग सर गुरुदासके घर दशहरेका न्योता खाने गया था। जाकर देखा कि गुरुदासके प्रसन्न होनेके कारण उनके सिरके बड़े-बड़े बिखर फूल उठे हैं। सुननेमें आया कि एक विद्यार्थीने कह दिया था कि गंगा स्नान करनेसे पाप धुलता है इस बातमें वह विश्वास नहीं करता। गुरुदास खिन्न होकर विस्मय दिखाकर कह रहे थे कि स्नान करनेकी भी आवश्यकता नहीं, केवल तीरपर खड़े 'गंगा-गंगा' कहकर दर्शन करनेसे न केवल यही बल्कि उसकी

बाद पुत्रसे पापमुक्त होकर अक्षय स्वर्गमें निवास करती हैं, इसमें सन्देहके लिए गुंजाइश कहाँ है ! कौन पातकी इस शास्त्र-वाक्यको अस्वीकार कर सकता है ! कहते-कहते गुस्सेमें वह मकानके अन्दर चले गए। याद है कि उस बचपनमें ही मैंने मन ही मन कहा था कि यही गुरुदास हैं ! उस युगके एम. ए. के गणितमें फर्स्ट बड़े वकील बड़े जुरिस्ट, बड़े जज विश्वविद्यालयके वाइस-चान्सलर। वे धार्मिक और सत्यवादी थे —उन्होंने ढोंग नहीं रचा था, जिस चीजको सच मानते थे वही करते थे,—इसीलिए इतने बड़े हुए थे। देखता हूँ, इस बातको लेकर तर्क आखिर आजसे भी बहस की जा सकती और अपने मतामी गौर मस्मारसे भी नहीं। इसीको अन्ध-विश्वास कहते हैं। इसीको नाना तर्कों, बातचीतकी नाना पैंतरेबाजियोंसे सच मान लेना। लिखा पढ़ा हुआ तो बात चीतमें रंग-रोगन लगा सकता है, नहीं तो सीधे सरल शब्दोंमें कहता है। फर्क केवल इतना ही है। यही हैं सर गुरुदास ! तुम्हारे सामने इन बातोंके कहनेमें डर लगता है, क्योंकि सभी जानते हैं कि आश्रम-वासी बड़े क्रोधी होते हैं। वे बात बातमें गाली-गुफ्ता करते हैं खदेड़कर मारने आते हैं। किसी भी आश्रमपर मैं प्रसन्न नहीं हूँ मगर किसी खास आश्रमपर मेरे दिलमें विद्वेषभाव विशेष या आक्रोश भी नहीं है। मैं जानता हूँ वे सभी समान हैं। सभी एकगर्भ हैं।

जाने दो आश्रमको। असल बात तो तुम हो। तुम्हें अत्यन्त स्नेह करता हूँ यह झूठ नहीं है। देखनेकी बड़ी इच्छा होती है। गाना सुनने और गप्प करनेकी भी। बहुत बूढ़ा हो गया हूँ अब और कितने दिन जिन्दा रहूँगा। क्या इधर एक बार नहीं आओगे ! मेरा स्नेहाशीर्वाद लेना—

श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

सामताबेड़ पानित्रास पोस्ट,
जिला—हावड़ा
१० वैशाख, १३३८

कल्याणीयेषु। मन्टू, देशोद्धार करनेके लिए सुभाषचन्द्र इन्होंने मुझे अजीब सी दुर्दशामें पामाल कर दिया था। रास्तेमें एक इन्होंने 'बोम बोम'का नारा

बनाया विलेकी खिड़कीसे कोयलेका चूरा सिर-बदनपर बिखेरकर प्रीति प्राप्त की और दूसरे दलने बारह घोड़ोंकी गाड़ीपर चढ़ाकर और डेढ़ मील लम्बा जुलूस निकालकर दिखा दिया कि कोयलेका चूरा कुछ भी नहीं है —माया है। जो भी हो फिर रूपनारायण (हवड़ा-मेदिनीपुर जिलोंकी सीमाकी एक नदी) के तीरपर आ गया हूँ। मुक्त मनुष्यके लिए कोई व्यक्तिगत माया नहीं होती— इस सबकी उपलब्धि करनेमें मेरे लिए कुछ भी बाकी नहीं है बस हो कोयलेके चूरेकी ! जय हो बारह घोड़ोंकी गाड़ीकी !

'शेष प्रश्न' पढ़कर खुश हुए हो यह जानकर बड़ा आनन्द हुआ। क्योंकि, खुश होना तो तुम लोगोंका नियम नहीं है। प्रवर्तक संघ (चन्दननगरकी एक सांस्कृतिक संस्था) ने इस बार अपने जुबलीपर मुझे फिर नहीं बुलाया। उन्होंने अनुरोध किया था कि इस पुस्तकमें आश्रम और आश्रमका यशगान करूँ। लेकिन साफ देखा गया कि मुझसे यह नहीं हो सका। 'शेष प्रश्न'में अति-आधुनिक-साहित्य कैसा होना चाहिए, इसीका कुछ आभास देनेकी चेष्टा की है। "खूब करूँगा, गर्जन करके गन्दी बात ही लिखूँगा" यही मनोभाव अति-आधुनिक साहित्यका केन्द्रीय आधार नहीं है—इसीका थोड़ा-सा नमूनाभर दिया है लेकिन बूढ़ा हो गया हूँ, शक्ति-सामर्थ्य पश्चिमकी ओर झुक गए हैं—अब तुम्हीं लोगोंपर इसका दायित्व रहा। तुम्हारी सारी रचनाओंको मैं बड़े ही ध्यानसे पढ़ता हूँ। रवीन्द्रनाथने तुम्हारे बारेमें पत्रमें जो कुछ लिखा है वह सच है। शुद्ध उन्नति स्पष्ट ही दिखाई पड़ती है। लेकिन यह बाहरसे किसीकी कृपासे नहीं,—तुम्हारी अपनी ही लम्बी साधनासे और खूनमें उत्तराधिकारसे जो पाया है उसके फलस्वरूप। पाण्डचेरीमें न रहकर कलकत्तेमें बैठकर भी ठीक ऐसा ही हो सकता था।

तुमने लिखा था कि श्री अरविन्द कहते हैं कि हम वैदिक युगकी सन्तान हैं। बात बहुत ही सच है। तुम्हारी रचनाओंमें इस सत्यका बहुत-कुछ प्रकाश क्रमशः उज्ज्वलतर होता जा रहा है। लेकिन अब तो तुम्हारे लिए सावधान होनेका समय आया है। शब्दचयन श्रेष्ठ होना चाहिए, मीठा होना चाहिए; किसी भी हालतमें यह नहीं लगना चाहिए कि प्रयोजनके अतिरिक्त एक भी अक्षर अधिक कहा है। यही आर्टिस्टिक धर्मका भीतरी रहस्य है। पहले शायद

क्योंकि असली सारी बातें नहीं कह सका, मगर यहीं लेखक सबसे बड़ी भूल करता है। यह भी ठीक अच्छा कि पाठक न समझें पर अधिक समझानेकी गरज लेखककी ओरसे प्रकट नहीं होनी चाहिए। समझे न? इसीलिए शायद कुछ लोग कहते हैं कि मन्टूकी रचनाओंमें तर्क वितर्क बीच-बीचमें प्रबल आकार धारण कर लेते हैं। जो पढ़ता है अगर उसे सोचकर समझनेका मौका नहीं मिलता है, तो वह अपनी बुद्धिका प्रमाण नहीं पाता। ऐसी दशामें क्रोध आता है। मैं आलसी हूँ चिट्ठी लिखनेसे डरता हूँ। लेकिन अगर तुम नजदीक होते तो तुम्हारी रचनाके ऐसे स्थलोंको दिखा देता। कितनी ही बार तुम्हारी रचनाओं-को पढ़ते-पढ़ते लगा कि अगर मन्टूने यहां इस तरह समाप्त किया होता—

मेरी उम्र हो गई है और रवीन्द्रनाथकी भी। अब कभी-कभी आशंका होती है कि इसके बाद बँगला उपन्यास-साहित्यका मान शायद कुछ नीचे चला जायगा।

तुमसे मुझे बहुत बड़ी आशा है मन्टू। क्योंकि गंदगीको ही जो लोग साहस-का परिचय समझकर उसको प्रकाश करते हैं तुम उनमेंसे नहीं हो। तुम्हारी शिक्षा और संस्कृति उनसे भिन्न है।

तुम्हारी नई कविताओंको ध्यानसे पढ़ा। बड़ी सुन्दर बनी हैं। अच्छा यह तो बताओ कि क्या श्री अरविन्द बंगला पढ़ लेते हैं? 'शेष प्रश्न' पढ़नेके लिए देनेपर क्या क्रुद्ध होंगे? जानता हूँ इन चीजोंको पढ़नेके लिए उनके पास समय नहीं है। मगर पढ़नेके लिए कहा जाय तो क्या अपमान समझेंगे? प्रश्नोत्तर सब शुरू हो गया है इसीको देखकर डर लगता है नहीं तो उनके जैसे गंभीर पंडितकी राय जाननेमें मेरी रचनाकी धारा शायद कोई दूसरा रास्ता ढूँढ़ती। उपन्यासके अन्दरसे मनुष्यको बहुतसी बातें सुननेके लिए बाध्य किया जा सकता है इस बातको क्या श्री अरविन्द स्वीकार नहीं करते हैं? जिसे इसका साहित्य कहते हैं उसके प्रति क्या वे अत्यन्त उदासीन हैं?

षोडशी रमा, हरिलक्ष्मी तुम्हें भेज दूँगा। मेरा स्नेहाशीर्वाद लेना।

—श्री शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

सामताबेड़ पानित्रास पोस्ट
जिला हवड़ा
१ मार्च १११८

परमकल्याणीयेषु। मन्टू, उत्तर न देनेके कारण यह न समझना कि तुम जो कुछ भेजते हो उसे ध्यानसे नहीं पढ़ता। श्री अरविंद जो छोटे-मोटे संदेश तथा तुम लोगोंके प्रश्नोंका उत्तर देते हैं जिन्हें तुम वहाँसे मेरे पास भेजते हो उन्हें पढ़ता हूँ सोचता हूँ और फिर पढ़ता हूँ। हाँ यह मानता हूँ कि अधिकांश-को नहीं समझ पाता। कभी-कभी वे मन चेतना या कानशसनेसके इतने भिन्न-भिन्न और सूक्ष्मातिसूक्ष्म पर्याय या स्तर बतलाते हैं कि वे मेरी बुद्धिसे परे हैं। कविताके सम्बन्धमें भी उनके विचारोंको सर्वदा नहीं मान पाता हूँ। दृष्टान्तस्वरूप कहा जा सकता है कि तुम्हारी जिस तरहकी कविताको उन्होंने सबसे अच्छा बताया है, वह तुम्हारी दूसरी कविताओंसे निम्न कोटिकी है। लेकिन यह भी कह देना चाहता हूँ कि वे ही कविताएँ वास्तवमें अच्छी हैं—भावमें भाषामें और छन्दमें। उनमेंसे चुनकर नम्बर दिये जायँ तो किसीकी राय कभी नहीं मिलेगी। भले ही न मिले। देखता हूँ कुछ दिनोंसे खूब मन लगाकर साहित्य साधना कर रहे हो। इसमें कहीं भी शिथिलताकी चेष्टा नहीं है, जैसे-तैसे पाठके लिए दैन्य नहीं है। अब तुम्हारी सफलता सुनिश्चित है।

मेरे जन्म-दिनके उपलक्ष्यमें तुमने जो गीत भेजा है वह कविता और छन्दकी दृष्टिसे सुन्दर बना है। लेकिन अतिशयोक्ति दोषसे दुष्ट है। संकोच होता है। उस दिन इसीको लेकर नलिनी सरकारसे (बंगालके राजनीतिज्ञ और व्यवसायी) कहा था कि,—मन्टू कहता है कि अगर तुम गाओ तो अच्छा हो। वह स्वर-लिपिके लिए तुम्हें लिखेगा। बेतारके अधिकारी कहते हैं कि जन्म-दिवसके मौकेपर वे इस गीतको तुम्हारे नामसे प्रसारित करेंगे। गायेंगे नलिनी। अच्छा यह तो बताओ, मेरी षोडशी आदि पुस्तकें हरिभाई (हरिदास चट्टोपाध्याय) ने भेजी हैं। मैंने चिट्ठी लिख दी है।

मैं तुम्हें कुछ और बातें बतलाना चाहता था मगर अब समय नहीं है डाकखाना बन्द हो जायगा।

तुम्हारे उन पुराने कागज-पत्रोंको कब या कहाँ वापिस

हाँ, सुनो —एक 'परिचय' नामकी अभिजातवर्गकी त्रैमासिक पत्रिका निकली है उसमें तुम्हारे मित्र नी° (नीरेन्द्रनाथ राय—बंगालके आलोचक और बंगवासी कालेजके अंग्रेजीके अध्यापक)ने शेष प्रश्नकी आलोचना की है। शायद पढ़ी होगी। उनके कथनका तात्पर्य यह है कि गोरा (रवीन्द्रनाथके इसी नामके उपन्यासका नायक) बापका लड़का है। इसीलिए 'कमल'का चरित्र गोराकी नकलके सिवा और कुछ नहीं है। अर्थात् नी° की आँखें भूरी होनेके कारण उसकी बुद्धि बिलकुल बिल्ली जैसी है। मुश्किलकी बात तो यह है कि ये भी कलम पकड़ते हैं और इनका लिखा छपता भी है, क्योंकि अपनी पत्रिका है। घमण्ड इस बातका है कि फ्रांसीसी जानते हैं, जर्मन जानते हैं। और अन्तकी ओर अनुप्रासकी झंकारमें प्रार्थना भी है—हे भगवान्। अपकार न होकर उपकार करना—इसी तरहकी कोई बात।

लेकिन अब एक मिनट भी समय नहीं है। आशीर्वाद लेना।

—श्री शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

सामताबेड़, पानित्रास हवड़ा
विजयादशमी ४ कार्तिक १३३८

मन्टू —मेरा विजयादशमीका शुभाशीर्वाद लेना। बहुत दिनोंसे चिट्ठी न लिख सका इसके लिए अनुतप्त हूँ।

पहले कामकी बातें खत्म कर लूँ। 'दोला' (दिलीपकुमारका एक उपन्यास) के शुरूके कुछ पृष्ठ इसीके साथ भेज रहा हूँ। इस पन्नेका यह आडम्बर देखकर शायद पत्रोत्तरमें लिखोगे कि 'महाशय आपकी भीखसे बाज आया अपने कुत्ते को दूर कीजिए। मेरी बापकी पाण्डुलिपि वापस कर दीजिये।' मुझे इसकी पूरी आशंका है। लेकिन मेरी तरफसे भी कुछ कैफियत नहीं है ऐसी बात नहीं। जैसे—

कुछ कुछ तुम्हारी ही तरह मैं भी उन बातोंको नहीं मानता। जैसे कला कलाके लिए, धर्म धर्मके लिए, सत्य सत्यके लिए आदि। कलाकी उपलब्धि सबकी एक प्रकारकी नहीं होती। यह अन्तरकी वस्तु है। उसकी संज्ञाका निर्देश करने जाना और उसके बाद ही एक जोरका झोंका देना फजूल है। धर्म, सत्य,

यदि केवल बातें ही नहीं हैं। उससे भी कुछ अधिक है, इस बातको सदा याद रखना चाहिये। कहानीका उद्देश्य अगर चित्तरंजन करना ही है तो भी यह तथ्य रह जाता है कि यह दो शब्दोंका समावेश है—चित्त और रंजन। डाक्टर जितेन्द्र मजूमदार, एम० डी० और मधूराम दोनोंका चित्त एक वस्तु नहीं। एक चित्त जिस बातसे खुशीसे फूला नहीं समाता हो सकता है कि दूसरेको उसमें कोई भी आनन्द न मिले। एक सुशिक्षित व्यक्तिको देखा है, जो 'दो बातों'के पन्द्रह तीन पृष्ठसे अधिक नहीं पढ़ सका। मगर मैं किस तरहसे पुस्तक समाप्त कर गया यह समझ ही न सका। कहानी लिखनेके नियमका उसमें कहाँतक उल्लंघन किया गया है, यह मैं नहीं जानता और जाननेकी इच्छा भी नहीं हुई। मालूम हुआ था तृप्ति पाई थी, यह एक तथ्य है। फिर भी अगर तर्क किया जाय कि कारण क्या है तो उसे मैं नहीं जानता नहीं समझता, अवश्य ही चुप रह जाऊँगा। लेकिन इस कथन मात्रको समझाके मनको किसी तरह राजी नहीं कर सकूँगा। अतएव इस समझानेके लिए ये मेरे तर्क नहीं हैं। जिन बातोंको तुमने बहुत सोचकर लिखा है उनको उपन्यास लिखनेमें आवश्यकता नहीं है, यह नहीं कहता। लेकिन मेरे मनमें उपन्यास लिखनेकी जो धारणा है उससे लगता है कि 'स्वप्न'के आखिरतक विचार करनेसे उसके अन्तिम हिस्सेके साथ प्रारम्भके हिस्सेका उतना सामंजस्य नहीं है। इसके सम्बन्ध पुस्तकको छोटा करनेकी आवश्यकता प्रारम्भकी ओर है। यह एक दोषकर है, शुरूके हिस्सेको पढ़नेमें रुचि जिसमें व्याघात न हो जाय। एक बात और है मधु। लिखने बैठकर लिखनेसे न-लिखना बहुत कठिन काम है।' 'कम्बोपाख्यान' सचमुच ही यह लेखक हैं। मगर वे न लिखनेके इशारेको नहीं समझ पाते हैं। क्या इस बातको तुमने उनकी पुस्तकोंमें नहीं देखा है? उनकी पुस्तकें पढ़ते समय बहुधा मुझे इसी बातका असन्तोष हुआ है कि काश अगर इस कौशलको जानते। इसीको कहते हैं लिखनेका संयम। कहनेकी विषय-वस्तु जिसमें आवेगकी प्रबलताके कारण प्रयोजनसे एक पग भी अधिक न ठेल ले जा सके, बल्कि एक पग पीछे रहे तो अच्छा। तुम अगर इतना छोड़ना पसन्द न करो तो अपने यहाँके किसी साहित्यिक मित्रको दिखाकर उनकी राय ले लेना। हाँ, ऐसा भी हो सकता है कि जिन अंशोंको इस समय काट दिया है वहीं पुस्तकके अन्ततक पहुँचते-पहुँचते

मैं ही फिर जोड़ दूँ। जो भी हो तुम्हारी राय जान लेना अच्छा होगा। अब बहुत जल्द ही सब-कुछ काट-छाँटकर दुरुस्त कर देनेमें अधिक देर नहीं लगेगी।

तुम्हारे नी— की चिट्ठियोंको बहुत ध्यानसे पढ़ा था। तुम मुझपर श्रद्धा रखते हो प्यार करते हो इसीलिए तुम्हें बहुत लज्जा है। लेकिन इससे कुछ काम तो होगा नहीं। उन लोगोंका पर्वतप्रमाण दम्भ इससे रंचमात्र भी कम होगा, मुझे इसमें विश्वास नहीं। और उस श्री— की बात यह आदमी कितना अधम है, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। तर्क-वितर्कमें भी मेरे नामके संग उसका नाम युक्त होगा यह बात आते ही समस्त मन लज्जासे संकुचित हो उठता है। उस आदमीके बारेमें इससे अधिक कुछ नहीं कहना चाहता। शायद एक दिन तुम आगे भी देखोगे कि विदेशी शासकके हाथों किन स्वदेशी मुद्गरोंने देशके कल्याणपर सबसे बड़ा आघात किया है, यह छोकरा उन्हींकी तालिका है। जाने दो।

द— से शीघ्र ही एक दिन मुलाकात करूँगा। यह नहीं बतलाऊँगा कि तुमने उसके बारेमें मुझे कुछ लिखा है। लेकिन तुमने मुझे जो कुछ सूचित किया है उसीके आधारपर जिरह करके सत्यका आविष्कार करनेकी चेष्टा करूँगा। देखूँ, द— क्या कहता है। श्री अरविन्दके सम्बन्धमें कहीं भी तो मैंने यह बात नहीं कही है। देशके सारे लोग उनपर गहरी श्रद्धा रखते हैं। क्या केवल मैं ही नहीं रखता! लेकिन आश्रमवासियोंके प्रति मेरा मन बहुत प्रसन्न नहीं है। कारण है कुछ द— की बातें और कुछ दूसरे आश्रम-वासियोंके सम्बन्धमें मेरी अपनी जानकारी। इसके अलावा तुम्हारा चला जाना मुझे बहुत ही खटका है। जब भाई दी पद था मालूम नहीं पड़ा तब दुःख हुआ था मगर जब गाने बजाने और उसके साथ ही साहित्यको तुमने अपनाया तब वह क्षोभ दूर हो गया था। सोचा था सभी नौकरी करेंगे और अपने देशके भाइयोंको हाकिम या बैरिस्टर बनकर जेल भेजेंगे'—ऐसा क्यों हो! मन्टूको खाने-पहननेकी चिन्ता नहीं है, वह अगर भारतके कला-शिल्पको विदेशियोंकी नजरोंमें बड़ा बना सके बुद्धिसे इसके रीति-नियमके पथसे एक नया मार्ग निकाल सके, तो क्या इससे देशका कम काम होगा कम गौरव होगा! तुम्हींसे एक बार सुना था कि विदेशियोंके पास 'सिम्फनी' नामक एक वस्तु है जो सचमुच ही बड़ी है और

जैसे तुम देशके संगीतको देना चाहते हो। इसके बाद एक दिन सुना कि तुम सब-कुछ छोड़कर वैरागी बनने चले गये हो। तब अचानक लगा कि मेरी अपनी ही कोई बहुत बड़ी क्षति हो गई है। इस जीवनमें तुम्हें शायद फिर नहीं देख पाऊँगा। क्या तुम समझते हो कि यह मेरे लिए कोई छोटा दुःख है? और कोई भले ही विश्वास न करे मगर तुम तो जानते हो। यह बात मुझे चिर दिन घोर दुःख देगी इसमें मुझे सन्देह नहीं।

एक मजेकी बात सुनो मन्टू। उस दिन एक जरूरी कामसे बैंक गया था। कैशियर बंगाली हैं। सुना कि एक नामी ज्योतिषी हैं। बड़े यत्नसे मेरा काम-काज कर चुकनेपर उन्होंने मेरी जन्म-कुण्डली देखनी चाही। बोला, कुण्डली तो नहीं है मगर राशि-चक्र नारदपुरमें लिखा है। उसे उसी समय उन्होंने लिख लिया, मेरी हाथ-रेखाओंकी छाप भी ली। इसके बाद आगे उनका काम था। वे जेबसे पंचांग निकालकर गणनामें जुट गये। क्या कहा जानते हो? कहा, एक सालके अन्दर आप दूसरा रास्ता पकड़ेंगे। पूछा दूसरे रास्तेका क्या मतलब? बोले, आध्यात्मिक। मैंने जवाब दिया कि कुंडलीमें ऐसी बात है यह मुझे काशीके भृगु-संहितावालोंने भी बतलाई थी। मगर मैं खुद इसपर राई भर भी विश्वास नहीं करता। क्योंकि आध्यात्मिकताका आ तक मेरे अन्दर नहीं है। बोले, एक सालके बाद अगर फिर मुलाकात हुई, तो इसका जवाब दूँगा। मैंने कहा एक सालके बाद भी मेरे मुँहसे यही सुनेंगे। उन्होंने केवल गर्दन हिलाई। उनका विश्वास है कि कुण्डलीका फलाफल गिनना जाने तो वह मिथ्या नहीं होता।

मन्टू, एक बात शायद तुमने पहले भी मुझसे सुनी होगी। मेरे वंशका एक इतिहास है। इस वंशमें मेरे मझले भाई (प्रभास) स्वर्गीय स्वामी वेदानन्दको लेकर आठ पीढ़ियोंसे अनेक व्यक्ति संन्यासी होते रहे हैं—केवल मैं ही घोर नास्तिक हुआ। वंशानुगत भाव मेरे खूनमें उमड़ी बहने लगी। अतएव जीवनके पचपन वर्ष पार कर लेनेपर किसीको नया शिष्य बना पानेकी आशा नहीं करनी चाहिए। लेकिन ममंगी महाशय बिलकुल निःशंक हैं कि मैं वैरागी होऊँगा ही।

सुना है कि तुम्हारा अनिलवरण धूलको चीनी बना सकता है। यहाँ चर्चा है कि आसामको सारी चीनी वही सप्लाई करता है,—क्या यह सच है? मैं

मैं तथा साहित्यिक संयमके अन्दर कितना रस सृजन किया जा सकता है इसकी परीक्षा करूँगा। उपादान या उपकरणके प्राचुर्यसे नहीं घटनाकी असाधारणतासे नहीं बल्कि अति साधारण ग्रामीण अंचलकी रोजमर्राकी घटनाओंको ही लेकर यह पुस्तक समाप्त होगी। विस्तार न होगा रहेगी गम्भीरता पुंखानुपुंख विवरण नहीं रहेगा केवल इशारा रहेगा। केवल रसिकोंके आनन्दके लिए। कहाँतक क्या हुआ है नहीं जानता। पर उपन्यास-साहित्यके बारेमें जितना समझता हूँ, उससे यह आशा करता हूँ कि और कुछ भी अच्छा न बना हो तो कमसे कम असंयत होकर उच्छृंखलताका स्वरूप प्रकट नहीं कर बैठा हूँ। लेकिन तुम्हारी राय चाहिए ही।

दूसरी बात है उस आश्रममें आनेके बादसे तुम्हारे बारेमें इस बातको मैं बड़े आनन्दसे लक्ष्य करता आ रहा हूँ कि वहाँ रहकर तुम्हारी पढ़ाई-लिखाई जितनी व्यापक, सुदूर प्रसारी हुई है उतनी ही गहरी और अन्तर्मुखी भी। और सत्यानुग ही हुई है। क्योंकि तुम्हारा ज्ञान और पाण्डित्य जैसा विनयी है, वैसा ही शान्त भी। खुद बहुत आघात पानेके बावजूद अपने पाण्डित्यकी लाठीसे तुमने किसीपर प्रतिघात नहीं किया। इस विषयमें तुम्हारी जितनी परीक्षा लेता हूँ, उतना ही मुग्ध होता हूँ कि मधु, मेरी समझमें है। वह सामर्थ्यके रहते हुए भी चुपचाप बर्दाश्त करता है उपेक्षा करता है। लेकिन मुँह बनाकर मनुष्यका अपमान करने, सतत आक्रमण करनेके लिए दौड़ नहीं पड़ता। उसके लिए कोई डर नहीं और उसके मित्रोंके लिए चिन्ताका कोई कारण नहीं। क्योंकि किर दिन उसकी यथार्थ महत्ता उसे नीचे आनेसे बचाती जायेगी। मधु, मैं उनसे बहुत डरता हूँ जो स्वयं साहित्यसेवी होकर भी अपने जनोंकी झूठे भाय भर्त्सना करते फिरते हैं। इस बातको वह किसी भी तरह नहीं समझ पाते कि दूसरोंको तुच्छ सिद्ध करनेसे ही अपना बड़प्पन सिद्ध नहीं हो जाता। इसके लिए कुछ और भी चाहिए। वह इतना सीधा रास्ता नहीं है।

उस दिन 'पुण्य पाथ' मासिक पत्रिकामें तुम्हारी रचना पढ़ी। उसमें दूसरी कितनी ही बातोंके अन्दर तुमने शुभ्र इरादत खुँ के नारी-विद्वेषका प्रतिवाद किया है कारणका अनुसन्धान किया है। तुम उसे प्यार करते हो तुम्हारे प्यारमें कहीं आघात पहुँचे, इसके लिए मेरे मनमें काफी दुविधा और संकोच है। फिर

भी लगता है कि तुम्हें भीतरकी कुछ बातें जान लेनी चाहिए। किसीने लिखा है कि साहित्य-सृजनके अन्तरालमें जो सत्य रहता है यदि वह छोटा हुआ तो उसकी सृष्टि भी बड़े होनेमें बड़ी बाधा पाती है। इस बातपर मैं भी विश्वास करता हूँ। बू ने लिखा है कि सावित्री जैसी मेसकी नौकरानी मिलती तो मैं मेसहीमें पड़ा रहता। लेकिन मेसमें पड़े रहनेसे ही नहीं होता—खवीस भी बनना चाहिए। नहीं तो सावित्रीके हृदयको नहीं जीता जा सकता तमाम जिन्दगी मेसमें बितानेपर भी नहीं। इसके अलावा यह लड़का यह भी नहीं समझता कि सावित्री सच मुच ही नौकरानी कोटिकी लड़की नहीं है। पुराणोंमें लिखा है कि लक्ष्मी देवीको भी मुसीबतमें पड़कर एक बार ब्राह्मणके घर दासीका काम करना पड़ा था। पाँच पाण्डवोंमेंसे अर्जुन उत्तराको जब नाचना-गाना सिखाते थे, तब उनकी बात सुनकर यह नहीं कहा जा सकता कि इस तरहका उस्तादजी मिलनेपर सभी लड़कियाँ नाचना-गाना सीखनेके लिए पागल हो जातीं। दूसरे सम्प्रदायोंकी तरह वेश्याओंमें भी ऊँची-नीची होती हैं। वेश्याके निकट जो वेश्या दासी होकर रहे उसका और उसकी मालकिनका चाल-चलन एक नहीं भी हो सकता। इसके बारेमें अनुभव जुटानेके लिए रुपया-अधेली भी व्यय करनेसे काम चल जाता लेकिन उनको जाननेके लिए बहुत-कुछ खर्च करना होगा। आसानीसे नहीं मिलतीं। रंग पोतकर वे बरामदेमें मोढ़ेपर नहीं आ बैठतीं। तुमने जिस मित्र-भार्याकी सुशील्य बाईजी (राजलक्ष्मी) का उल्लेख किया है, उसे क्या सभी देख पाते हैं? उसके लिए अनेक उपकरण अनेक आयोजन न हों तो नहीं बन सकता। या तो अपने बहुत रुपये या किसी राजकुमार मित्रके बहुत रुपये खर्च हुए बिना ऊपरी स्तरमें प्रवेशाधिकार नहीं मिलता। जो रास्तेपरसे आदमी पकड़कर ज्यादातर घरमें जा घुसती हैं उनका परिचय मिलता है। गरीबोंका अनुभव नीचेके स्तरमें ही सीमित रहता है। इसीलिए यह श्रीकान्तकी टगर और बाड़ी-वालीको ही पहिचानता है। यह सारे उदाहरण अनावश्यक और लिखनेमें भी लज्जाजनक हैं। लेकिन जो लोग अन्धाधुन्ध नारी-जातिके प्रति ग्लानिके प्रचारको ही यथार्थवाद समझते हैं उनमें आदर्शवाद तो है ही नहीं यथार्थवाद भी नहीं है। है केवल असंयम और झूठी स्पर्धा—न जाननेका अहंकार। स्त्रियोंके विरुद्ध बन्द करनेकी स्पिरिटसे साहित्यका सृजन कभी नहीं होता।

मेरा आन्तरिक स्नेह और शुभेच्छा लेना। वासनासे मुलाकात हो तो कह देना कि मैं उसे आशीर्वाद देता हूँ।

—शरत् बाबू

सामताबेड़ पानित्रास हावड़ा,
१ भाद्रपद, ३३४

कल्याणीयेषु। मणू, तुम्हारी चिट्ठी मिली। श्रीकान्तके चतुर्थ पर्वपर तुम्हारा भेजा हुआ निबन्ध पहले ही मिल गया था। पहले लगा था कि निबन्ध बहुत बड़ा है। शायद काटने-छाँटनेकी जरूरत है। लेकिन दो बार बड़े ध्यानसे पढ़नेके बाद मुझे सन्देह नहीं रहा कि इस रचनामें कुछ काट-छाँट नहीं आ सकता। मेरी पुस्तकके बारेमें लिखा है इसीलिए मुझे इतना अच्छा लगा है कि नहीं यह बात मेरे मनमें बार-बार आई है। मगर बहुत सोचनेपर भी कहनेमें संकोच नहीं है कि यह समालोचना तुमने किसी भी पुस्तकके बारेमें की होती, मुझे इतनी ही अच्छी लगती। इसका कारण मुख्यतः श्रीकान्तकी ही बातें हैं यह सच है। पर साहित्यके विचारकी जिस धाराकी तुमने इतने मधुर और सहृदयतासे आलोचना की है वह केवल सुन्दर ही नहीं बन पड़ी है उसमें निरपेक्ष न्याय भी हुआ है। इसलिए कोई भी सहृदय पाठक इसे स्वीकार करेगा। इसके अलावा आलोचना कथोपकथनकी शैलीमें की गई है। मणू, तुमने यह बड़ी अच्छी पद्धतिका आविष्कार किया है। इस तरहसे नहीं लिखनेसे इतने बड़े निबन्धको चाहे वह कितना भी अच्छा क्यों न हो पढ़नेके लिए शायद लोगोंमें धीरज नहीं रहता। पढ़नेमें एक सुन्दर कहानी जैसा लगता है। इसे किसी अच्छी मासिक पत्रिकामें छपनेके लिए भेजूँगा और अनुरोध करूँगा कि इस रचनाकी कोई भी चीज काटी न जाय। लेकिन तुम्हें प्रूफ भेजना सम्भव होगा कि नहीं, यह ठीक ठीक नहीं बता सकता। पर अगर समय हुआ तो यही होगा।

श्रीकान्त चतुर्थ पर्व तुम्हें इतना अच्छा लगा है जानकर कितनी प्रसन्नता हुई यह नहीं बतला सकता। इसका कारण यह है कि इस पुस्तकको मैंने सचमुच ही बड़े यत्नसे मन लगाकर हृदयवान् पाठकोंको अच्छा लगनेके लिए ही लिखा

है। तुम्हारे जैसा एक पाठक भी श्रीकान्तको भाग्यसे मिला है, यही मेरे लिए परम आनन्दकी बात है। अब दूसरा पाठक नहीं चाहिए। कमसे कम न मिले तो भी दुःख नहीं और मन ही मन सोचा था कि न जाने कितनी भाषाओंकी कितनी ही पुस्तकें तुमने इन कई वर्षोंमें पढ़ी हैं फिर भी उनके बीच मेरे जैसे मूर्ख आदमी की रचना पढ़नेके लिए तुम्हें समय मिला है, यह क्या कम आश्चर्यकी बात है! जानता हूँ कि मैं कितना तुच्छ कितना सामान्य लेखक हूँ। न विद्या है और न पांडित्य। देहाती आदमी जो मनमें आता है लिख जाता हूँ। इसीलिए आजके जमानेमें पण्डित प्रोफेसर लोग जब गाली-गलौज करते हैं तो डरके मारे चुप रह जाता हूँ। सोचता हूँ कि इनके सामने मैं कितना नगण्य कितना साधारण हूँ। लेकिन इनके अन्दर जब तुम्हारे जैसे मित्रकी प्रशंसा मिलती है तो इस बातको गर्वके साथ याद करता हूँ कि पाण्डित्यमें मण्टू इनसे छोटा नहीं है। फिर भी उसे भी तो अच्छा लगा है। यह मेरे लिए बहुत बड़ा भरोसा है, बहुत बड़ी सान्त्वना है।

बहुत दिनोंसे तुम्हें नहीं देखा है। देखनेकी बहुत इच्छा होती है। इधरमें अगर पाण्डिचेरी आऊँ तो क्या दो-एक दिनके लिए रहनेकी व्यवस्था कर सकते हो? आश्रममें रहनेका नियम नहीं है, यह मैं जानता हूँ। पर वहाँ क्या कोई होटल नहीं है? अगर हो तो लिखना। इति।

—तुम्हारा नित्य शुभानुध्यायी श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

सामताबेड़, पानित्रास, हावड़ा
११ माघ, १३४

परमकल्याणीयेषु। मण्टू, बहुत दिनोंसे तुम्हें कुछ नहीं लिखा। आज सबेरे अचानक तुम्हें लिखनेकी इच्छा इतनी प्रबल क्यों हो उठी यही सोचता हूँ। शायद फरीदपुरके दीनेश बाबूकी आन्तरिक बातें होंगी। तीन दिन हुए फरीदपुरसे लौटा हूँ। साहित्य-सम्मेलन था और म्युनिसिपैलिटी-पार्टी। मंचपर जब कथा और सारगर्भ निबन्ध पढ़ा जा रहा था तब नेपथ्यमें 'अनामी'की आलोचना चल रही थी। हाँ, असली चीजकी विरोधी मत था। इसके बीच अचानक एक

समन स्वीकार कर बैठे कि अनामी पुस्तकको उन्होंने शुरूसे आखिरतक बार बार पढ़ा है और बार बार और पढ़नेकी इच्छा है। तब 'कहते क्या हैं दीनेश बाबू, आप फरीदपुर बारके विशिष्ट रत्न हैं। प्रचण्ड तार्किक वकील हैं—आपमें यह दुर्बलता कैसी।'

'दीनेश बाबू, आपका दिमाग क्या खराब हो गया है!'

'दीनेश बाबू, देखता हूँ आप संसारके परम आश्चर्य हैं।' आदि आदि।

अवश्य ही मैं चुप था—मौन गवाहकी तरह। एक बार मुझे अकेला पाकर इन्हीं दीनेश बाबूने कहा 'शरत् बाबू, सारी पुस्तकें संसारमें सभीके लिए नहीं हैं। मैं श्यामदास बाबाजीका शिष्य—वैष्णव हूँ। भगवान्में विश्वास करता हूँ। दिलीप बाबूने जिस भावकी प्रेरणासे कविताएँ लिखीं संसारमें उसकी तुलना कम ही है। जब भी समय मिलता है मुग्ध होकर कविताओंको पढ़ता हूँ। कितनी अच्छी लगती हैं, यह दूसरेको नहीं समझा सकता।

सुनकर मन ही मन सोचा इससे बढ़कर निष्कपट सच्ची आलोचना और क्या हो सकती है! जिस तारको तुमने झंकृत किया है उनके हृदयका वही तार गुनगुनाकर बज उठा है। लेकिन जिसका तार नहीं बजा वह किसीके बार-बार बार पढ़नेकी बात सुनकर आश्चर्य प्रकट न करेगा, तो क्या करेगा? और जो लोग केवल विस्मय प्रकट करनेको ही काफी नहीं समझते हैं वे गाली-गलौजपर उतर आते हैं। मात्रा जितनी ही बढ़ती जाती है, अपनेको उतना ही निडर और बहादुर आलोचक समझते हैं। ऐसा ही तो देखता आ रहा हूँ।

उस दिन हरिन नामके एक लड़केने मुझे एक चिट्ठी लिखी है कि वह 'अनामी'के लिए एक आलोचना-सभा करना चाहता है और मुझे सभापति बनाना चाहता है। मैंने उस चिट्ठीको पानेके दस मिनटके भीतर ही जवाब दे दिया—राजी हूँ। मन स्थिर करना और दस मिनटके अन्दर जवाब देना! मैं कहता हूँ कि दीनेश बाबूके बार-बार बार अनामी पढ़नेसे भी यह बात विस्मयजनक है। आगामी सभामें इस बातका उल्लेख करूँगा।

कुछ दिनोंसे तुमसे एक अनुरोध करनेकी बात सोच रहा हूँ। वह है भा-की रचनाके सम्बन्धमें। वह तुम्हें श्रद्धा करता है, तुम्हारे कहनेसे सुन भी सकता है। उससे कहना कि लिखनेमें वह जरा संयत हो। हाँ, संयम वस्तु एक प्रकारकी

सहज बुद्धि (इन्सटिंक्ट) है। जाननेमें अगर न हो तो दूसरेको समझाया नहीं जा सकता। फिर भी कहना कि जहाँ-तहाँ अकारण ही दूसरोंकी रचनाओंके उद्धरण देना इससे बढ़कर असुन्दर वस्तु दूसरी नहीं। अमुक ग्रन्थकारकी —' इन बातोंसे मैं एकमत हूँ और उस आदमीकी " - - ये पंक्तियाँ बड़ी हैं अमुक लेखककी " - - " इन पंक्तियोंने बड़े ही सुन्दर ढंगसे प्रकट किया है, आदि आदि। ये बातें अत्यन्त स्पष्ट रूपसे पाठकसे कहना चाहती हैं कि तुम लोग देखो कि इस छोटी-सी उमरमें मैंने कितना समझा है, कितनी पुस्तकें पढ़ी हैं। अस्तु, तुम अपनी रचनाओंके उद्धरणोंको उससे एक बार पढ़नेके लिए कहना। कहना कि तुम्हारे बहुविस्तृत और गहरे अध्ययनमें यह नितान्त आवश्यकताके कारण आ पड़ी हैं। अकारण ही नहीं आई हैं और पाण्डित्य दिखानेकी अभिलाषासे भी नहीं। आ' सकता है अभीसे उसे इस विषयमें सावधान कर देनेसे आया है यह अच्छा ही होगा। वह शायद नहीं जानता कि उपरोक्त मामलेमें दूसरेका अनुकरण कर पाना सहज काम नहीं। बहुत ही कठिन है। दूसरे हजारों प्रकारके अर्थकर्मोंकी बात नहीं उठाऊँगा। क्योंकि अगर तू 'उसका साहित्यिक आदर्श (हीरो) है तो उसे सँभलना नहीं आ सकेगा। गहरी पीड़ाके साथ ही ये बातें तुमसे कहीं। अस्तु, तुम्हें न जाने कितनी बार कहा है कि लिखनेमें संयम-साधना जैसी दूसरी कठिन साधना और नहीं। जिसे अनायास ही लिख सकता था उसे न लिखना। रसिक पाठकका मन तृप्तिसे परिपूर्ण हो जाता है, जब वह संयमके इस चिह्नको देखता है। जाने दो। मेरी यह चिट्ठी जो 'स्वदेश' या 'प्रचारक'में प्रकाशित हुई थी उसके बारेमें कविने मुझे एक चिट्ठी लिखी थी। उसके अन्तमें लिखा था "तुमने बार-बार मुझ तीक्ष्ण कठोर भाषामें आक्रमण किया है। लेकिन मैंने कभी तुम्हें नाम या गुण रूपसे निन्दा करके बदला नहीं लिया। इस रचनाने उस पेटरिसमें एक अंक और जोड़ मत दिया है।"

उस दिन उमाप्रसाद (श्री श्यामाप्रसाद मुकर्जीके छोटे भाई) ने मुझसे कहा था कि इस चिट्ठीको लिखकर मैंने अन्याय किया है। क्योंकि इसकी प्रत्येक पंक्तिमें जहर फैल गया है। लेकिन क्या करूँ लाचार हूँ। जो लिख गया वह अब वापिस नहीं लिया जा सकता। अब बहिन मेरा विच्छेद शायद सम्पूर्ण

हो गया। किन्तु इस विषयमें तुमने 'स्वदेश'में जो चिट्ठी लिखी है वह बहुत अच्छी बनी है। गुस्सा प्रकट हुआ है, पर क्षोभ नहीं। मुझसे यही त्रुटि हो गई है। लेकिन न जाने क्या हो गया 'परिचय'की उस रचनाको पढ़ते ही सारे बदनमें आग लग गई। तब कागज-कलम लेकर चिट्ठी लिख डाली।

श्रीकान्तके चतुर्थ पर्वकी आलोचना 'विचित्रा'में एक बार फिर पढ़ी। अगर यह श्रीकान्त न होकर और कुछ होता तो मुक्त कण्ठसे प्रशंसा करके चैन की साँस लेता। रचना सचमुच ही सुन्दर है। जिसने सचमुच ही पढ़ा है और समझा है उसके आनन्दकी अभिव्यक्ति है।

मन्टू, बीच-बीचमें चिट्ठी लिखना, जवाब मिले चाहे न मिले। तुम्हारी चिट्ठी पाना मेरे लिए परम तृप्तिकी बात है। एक बात और। बन्धु सुरेन मैत्र (जिनका हाथ छिर गया है जो शिवपुर इंजीनियरिंग कालेज, जिनके यहाँ हम जाते थे) श्री अरविन्दके बड़े भक्त हैं। उन्होंने मुझसे अनुरोध किया है कि आज तक तुमने मेरे बारेमें उन्हें जितनी रचनायें भेजी हैं (और लिखनेके बावजूद जिन्हें मैंने कभी वापिस नहीं किया है) उन्हें एक बार पढ़नेके लिए माँगा है। मैंने कहा है कि दूँगा। लेकिन कहीं गुस्सा न हो जाना। सुरेन भक्त होनेपर भी आदमी अच्छा है। इति।

तुम्हारा नित्य शुभाकांक्षी—श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

शामताबेड़, पानित्रास, हवड़ा

२ माघ १३४

मन्टू, अभी अभी तुम्हारी पिछली चिट्ठी मिली। कामकी बातें पहले कह दूँ। (१) 'देशेर पत्र' भेजना। दो-एक दिनोंमें जो कुछ मन चाहेगा लिखूँगा। लेकिन डर है कि कहानी-उपन्यासके सिवा मैं और कुछ भी नहीं लिख पाता। निबन्ध तो भाषाकी दरिद्रताके कारण बिलकुल अपठनीय हो जाता है। मेरी चिट्ठी लिखनेकी भाषा तो देख ही रहे हो। शायद इसलिए 'स्वदेश'की चिट्ठी कैसी भद्दी हो गई है। फिर भी अपनी सीधी-सादी देहाती भाषामें आनन्द प्रकट करनेका लोभ संवरण करना कठिन है। अतएव लिखूँगा ही। कोई मुझे रोक नहीं सकेगा।

(२) हीरेनकी बात उस चिट्ठीमें लिखी है। 'अनामी'की आलोचना-सभामें सम्मिलित होऊँगा।

(३) श्रीकान्तके चतुर्थ पर्वकी 'विचित्रा'में प्रकाशित आलोचनाको किसी भी तरह क्यों न छपाओ लोग पढ़ेंगे ही। लेकिन 'रंगीन परदा'के साथ देना शायद अच्छा ही होगा। बल्कि और किसीकी राय भी ले लेना।

एक बात और। 'पथके दावेदार'की आलोचना या उल्लेख न करना ही अच्छा है। क्योंकि आजकल आईन-कानून इतना कठोर हो गया है कि केवल उसीके लिए ही सरकार शायद सारी पुस्तकको बन्द कर ले।

जिस उपन्यासको तुम लिख रहे हो (जो तीन-चार महीनेमें समाप्त होगा) आशा है वह और भी अच्छा होगा। कथोपकथन जहाँ भी आये, सहज भाषा काममें लाना। वह छोटी होनी चाहिए। अर्थात् एक ढंग ढेर-सी नहीं। एक अध्यायमें कुछ, दूसरे अध्यायमें बाकी हिस्सा—इसी तरह। उपमा, उदाहरण कोई भी चीज रवीन्द्रनाथकी तरह निरर्थक और असम्बद्ध न हो उठे। मनुष्यको अलङ्कार सजानेकी रुचि और सुनारकी दुकानमें अलंकारोंके ढेर के सजानेकी रुचि एक नहीं है। इस बातको सदा याद रखना होगा। असंकृत वाक्यका बाहुल्य कितना पीड़ादायक होता है, इस बातको केवल पाठक ही जानते हैं। लेकिन अब बस, बहुत ढेर-सा उपदेश बिना मूल्य दे डाला। रुपयेका पाठ पढ़ाते हुए देखता हूँ खुद ही सबसे अधिक असंयत हो गया हूँ। आशीर्वाद और प्यार लेना।

—शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

पी ५११, मनोहर पुकुर, कालीघाट, कलकत्ता
७ जेठ, १३४१

परमकल्याणीयेषु। पहले अपनी खबर दे दूँ। परसों परसे ब्लोस्नेके बादसे सिरमें दर्द है। गुरुदेव महाशय, डा० कानाई गांगुली बैठे हुए हैं। एक डाक्टर खानेमें टेलीफोन किया जा रहा है और मेरे ड्राइवरसे कहा जा रहा है कि वह

मोटर निकाले। अर्थात् खूनका दबाव दिखाने जाऊँगा। अगर दबाव अधिक न हुआ तो अच्छा ही है, अगर हुआ तो बिस्तरपर पड़कर परम आनन्दसे समय बिताऊँगा। मेरे लिए इससे बढ़कर आनन्द और आरामकी दूसरी वस्तु नहीं है। श्री भगवान् यही करें। जाने दो।

गुरुदेवने तुम्हारी चिट्ठी आधी पढ़ा दी है। किसी मराठी जाननेवाले मित्रसे बाकी आधीको पढ़ा लूँगा।

भाई, इस अति तुच्छ 'निष्कृति'को लेकर समरांगनमें कूद पड़ना और टीनका खड्ग लेकर मैंढेको काटने जाना एक ही बात है। सचमुच ही अपने अन्दर विशेष कुछ नहीं पाता। केवल यही एक बात याद आती है कि तुम्हारे गुरुदेवका आशीर्वाद है और तुम्हारा अकृत्रिम स्नेह और श्रद्धा। लेकिन भाई, ऐसा लगता है कि मेरी ओरसे कुछ भी नहीं है।

तुम श्रीकान्तका अनुवाद करनेमें क्यों संकोच कर रहे हो? अगर अनुवाद होना है तो तुम्हींसे होगा। भवानीको बुलाकर श्रीकान्त प्रथम पर्व देकर किसी अध्यापकका अनुवाद कर डालनेके लिए कहा था। आठ-दस दिनके बाद वह खुद तो आया नहीं चिट्ठी लिखकर सूचित कर दिया कि हिम्मत नहीं होती और वैसी अँग्रेजीमें उसने चिट्ठी लिखी है उससे लगता है कि उसकी बात गलत नहीं है। उसने सच ही लिखा है उससे नहीं होगा। यदि होगा तो वह अखबारी भाषा होगी। सोमनाथ मित्र दूसरे पर्वका अनुवाद करनेके लिए उद्यत हो गये हैं, इस बातको मैं कुछ भी नहीं जानता। 'विचित्रा'के उपेनने अगर खुद यह व्यवस्था की हो, तो बात दूसरी है। पता लगाऊँगा। मैं तो कुछ सोच भी नहीं पा रहा हूँ कि तुम्हारे सिवा इस कामको और कौन हाथोंमें ले सकता है। 'निष्कृति'का जो अनुवाद तुमने किया है उससे अच्छा कौन करता? लेकिन तुमसे श्रीकान्तका अनुवाद करनेके लिए कहनेकी इच्छा नहीं होती। क्योंकि इतने बड़े परिश्रमके काममें हाथ लगानेसे तुम्हारे कामोंको क्षति पहुँचेगी।

'निष्कृति' के बारेमें तुम्हें जिस तरहकी व्यवस्था करनेकी इच्छा हो करना। यहाँ छोटी कहानियोंका अनुवाद करानेकी चेष्टा कर सकता हूँ। मगर आदमी नहीं मिलते। 'पण्डित महाशय'का अनुवाद मेरे ही पास है मगर उसे देखनेसे

शायद तुम्हें दुःख होगा। मामाके साथ मेरी अभीतक मुलाकात नहीं हुई। आशा करता हूँ कि वो एक-दिनमें हो जायगी। मेरा स्नेहाशीर्वाद लेना। इति।

—शरत् दादा

पुनश्च—बाकी समाचार बुद्धदेव ही तुम्हें देगा।

श० च०

पी ५६६, मनोहर पुकुर, कलकत्ता
१ माघ १३४१

परमकल्याणीयेषु। मण्टू, कल रातको गाँवके घरसे यहाँ आ गया हूँ। तुम्हारी चिट्ठियाँ मिलीं। एक-एक करके कामकी बातोंका जवाब दूँ।

(१) तुम्हारी निशिकान्तकी तस्वीर अच्छी बनी है। बहुत दिनोंके बाद फिर तुम्हारा मुँह देखा बड़ी प्रसन्नता हुई। अब सचमुच ही देखनेकी बड़ी इच्छा होती है। लेकिन आशा छोड़ दी है। सोचा है, इस जीवनमें अब नहीं देख सकूँगा।

(२) टाइपराइटर सही-सलामत पहुँच गया है यह संतोषकी बात है। डर था कहीं विकलांग होकर तुम्हारे आश्रममें जा पहुँचे। उस दिन हरेनने आकर कहा कि मण्टू दादाका अपना टाइपराइटर पुराना हो गया है उन्हें एक नई मशीन चाहिये। कहा जरा खोज-बूझकर भेज दो न हरेन। वह राजी हुआ। यह सब-कुछ उसीने किया है। मैं जड़ वस्तु हूँ। मुझसे कुछ भी नहीं होता। मैंने केवल रुपयेका चेक लिख दिया था। तुम्हें पसन्द आया है इससे बढ़कर मेरे लिए आनन्दकी बात नहीं। जिस आदमीने अपना सब-कुछ दे दिया, उसे देना नहीं है पाना है। मुझे बहुत-कुछ मिला, तुमसे बहुत अधिक।

(३) श्री अरविन्दके हाथकी लिखी चिट्ठी सम्हालकर रख दी है। यह एक रत्न है।

(४) 'निष्कृति' का अच्छा अनुवाद करनेके लिए तुम यथासाध्य करोगे, इसे मैं जानता था। तुम मुझे सचमुच प्यार करते हो इसलिए नहीं। जो यथार्थमें

साधुका मत ग्रहण करते हैं वह उनका स्वभाव है। इसको किये बगैर उनसे नहीं रहा जाता। या तो करते नहीं हैं पर करनेपर बेगार नहीं करते।

(५) जब श्री अरविन्दने स्वयं देख देनेका संकल्प किया है, तो अनुवाद अच्छा ही होगा। लेकिन मण्टू, पुस्तकमें अपना कौन-सा गुण है? श्री अरविन्द को क्यों अच्छी लगी नहीं जानता। कमसे कम अच्छी नहीं लगती तो अवश्य नहीं होता लिख भी नहीं होता। तुम जब श्रीकान्तका प्रचार कर सकोगे, तभी आशा करूँगा कि एक बंगाली कहानीकारको पश्चिमवाले कुछ श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हैं। तुम्हारा उद्यम और श्री अरविन्दका आशीर्वाद रहा तो यह असम्भव भी एक दिन सम्भव होगा। इसकी मुझे उम्मीद है।

(६) अनुवादके मामलेमें तुम्हारी पूर्ण स्वतन्त्रता मैंने स्वीकार की है। इसका कारण यह है कि तुम तो केवल अनुवादक ही नहीं हो खुद भी बड़े लेखक हो। तुम्हें [illegible] साबित करनेवाले लोगोंकी कमी नहीं, उनमें वह चेष्टा है और अपप्रचारकी भी सीमा नहीं। होने दो। उनकी समवेत चेष्टासे तुम्हारी प्रतिभा और एकाग्र साधना कहीं गयी है। तुम्हारे गुरुकी क्षमाकांक्षा तो सब-कुछके पीछे है ही। उनकी सारी कुचेष्टामें ध्वस्त होंगी और तुम्हारे अन्तरकी जाग्रत शक्ति सार्थक नहीं होगी, ऐसा हो ही नहीं सकता मण्टू।

(७) रवीन्द्रनाथ मुझे इन्ट्रोड्यूस करना चाहेंगे इसका भरोसा नहीं करता। मेरे प्रति तो वह प्रसन्न नहीं हैं। इसके अलावा उनके पास समय ही कहाँ है। साहित्य-सेवाके कामके बारेमें वह मेरे गुरुजन हैं, उनका मान मैं कभी छोटा नहीं करूँगा। मन ही मन उनपर इतनी श्रद्धा भक्ति रखता हूँ। लेकिन आपने गवाही नहीं दी। मेरे प्रति उनकी विमुखताका अन्त नहीं। अतएव इसकी चेष्टा करना बेकार है।

(८) हीरेन शायद आज ही कलके अन्दर आयेगा। उसे तुम्हारे कागज भेज देनेके लिए कहूँगा।

(९) बाकी रही तुम्हारी बात। मैं तुम्हारा बहुत ही कृतज्ञ हूँ मण्टू, इससे अधिक क्या कहूँ। चिट्ठी लिखनेकी बात तुमसे मेरे लिए कठिन रही है। मानो लगातार लिख ही नहीं पाता। इसलिए मुझे जो बातें कहनी चाहिए थीं वह

नहीं सका था। यह मेरी असमर्थता है, अनिच्छा कभी नहीं। इसपर विश्वास करना।

मेरा स्नेहाशीर्वाद लेना और औरोंको कहना। लड़केकी बात याद नहीं आ रही है। स्वर्गीय दादा महाशयके यहाँ या लड़के यहाँ शायद देखा होगा।

(१) श्री अरविन्दको नववर्षकी प्रार्थना सचमुच ही बहुत ही अच्छी लगी। यथार्थमें वह बहुत बड़े कवि हैं।

शुभाकांक्षी

श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

पी ५५६ मनोहर पुकुर, कालीघाट, कलकत्ता

७ पौष, १३४२

परमकल्याणवरेषु। मन्टू, बहुत दिनोंसे तुम्हें चिट्ठी नहीं लिख सका। जानता हूँ अन्याय हुआ है। इसकी सजा है इससे भी बेखबर नहीं। लेकिन यह भी देखता आ रहा हूँ कि असमर्थ लोगोंकी असमर्थता अगर अकृत्रिम होती है तो उसे पूरा करनेके लिए भगवान् आदमी भी जुटा देते हैं एकदम रसातलमें नहीं भेज देते। कुमुदेव महाशयके रूपमें यह आदमी मुझे मिला है। मैं तुम्हें जो कुछ कहना चाहता हूँ उनके मार्फत कहता हूँ। और वही खबर भी दे जाता है। तुम्हारी तरह उसका स्नेह भी मेरे प्रति सचमुच ही आन्तरिक है। सचमुच ही चाहता है कि मेरा भला हो, मेरे यश, मेरी प्रतिष्ठामें कहीं कोई कमी न रह जाये। उस दिन उसने मुझे जबरदस्ती पकड़ ले जाकर हॉफमैनके कैमरेके सामने बिठाकर तस्वीर उतरवा कर तब छोड़ा। कहा दिलीपकुमारकी माँग है अवहेलना नहीं कर सकता। उन्होंने जो परिश्रम किया है हमें उनकी कुछ सहायता करनी चाहिये, अर्थात् मेहनतमें हाथ बटाना चाहिये। सब-कुछ क्या वे अकेले ही करें। कुमुदेव समझता है कि मैं बहुत बड़ा लेखक हूँ। अतएव यह लेखकका सम्मान मुझे मिलना ही चाहिये। मैं बहुतेरा कहता हूँ कि मैं बहुत छोटा लेखक हूँ। योरप मुझे कोई सम्मान नहीं प्रदान करेगा। इसलिए अपने अन्दर कोई उत्साह नहीं पाता। वह कहता है कि तो क्या दिलीप बाबू व्यर्थ ही इतना परिश्रम कर रहे हैं! यानी दिलीप मेहनत नहीं करते। श्री अरविन्दने निश्चय ही उन्हें आशा दिलाई है। मैं कहता हूँ कि तो अरविन्द जानें।

है, तो सच ही कहा है मन्टू। अपना मन तो जानता है कि यह सत्य है, परम सत्य है।

इसके अलावा और एक बात है कि मुझसे कौन बड़ा है, कौन छोटा है, इसे लेकर यथार्थमें मेरे मनमें कोई आक्षेप कोई बेचैनी नहीं है। अगर कहते कि मेरी कोई भी पुस्तक उपन्यास कहलानेके योग्य नहीं है, तो शायद उससे भी सामयिक वेदनाके सिवा और कुछ नहीं होता। शायद विश्वास करना कठिन होगा और ऐसा लगेगा कि मैं अत्यधिक दीनता प्रकट कर रहा हूँ लेकिन इसीकी ही साधना मैंने आजीवन की है। इसीलिए किसी आक्रमणका प्रतिवाद नहीं करता। जवानीमें एक आध बार रवीन्द्रनाथके विरुद्ध किया था सही, लेकिन वह मेरी प्रकृति नहीं विकृति थी। नाना कारणोंसे ही शायद गलती कर बैठा था।

स्वास्थ्य बर्बाद हो गया है। ऐसा नहीं लगता कि अब अधिक दिनोंतक रहना पड़ेगा। इस थोड़े-से समयमें इसी तरहका मन लेकर रहना चाहता हूँ। जवानीकी कुछ भूलोंके लिए पश्चात्ताप होता है। मेरी एक बात याद रखना मन्टू, तुम किसी भी कारणसे किसीको व्यथा न देना। तुम्हारा काम ही तुम्हें सफलता देगा।

अपने मकानोंको बेचे दे रहे हो? लेकिन क्या इसकी कोई जरूरत है? इस देशके सारे सम्बन्धोंको तुम छिन्न किये दे रहे हो, सोचने पर बड़ा क्षोभ होता है।

मेरा चिट्ठी लिखना जरा अस्तव्यस्त होता है, विशेष करके इस पीड़ित दशामें। अगर कहीं कोई असंलग्न बात लिख दी हो तो खयाल न करना। अगर कुछ अच्छा रहा तो तुम्हारी दोनों ही पुस्तकें ध्यानसे पढ़ूँगा। इति।

शुभार्थी—श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय।

जेठ (१) ११४

मन्टू, श्रीकान्त चतुर्थ पर्वके सम्बन्धमें कुछ अपनी बात बतलाऊँ। मेरी इच्छा थी साधारण तरह घटनाओंको लेकर इस पर्वको समाप्त करूँगा और नाना दिशाओंसे थोड़ी-सी बातों तथा संयमके अन्दरसे कितने रसका सृजन होता है उसकी परीक्षा करूँगा। उपादान या उपकरणका प्राचुर्य यहाँ घटनाको

असाधारणता नहीं बल्कि अत्यन्त साधारण ग्राम्य जीवनके प्रत्येक दैनन्दिन मामलेको लेकर यह पुस्तक समाप्त होगी। विस्तार नहीं रहेगा गहराई रहेगी। विस्तृत विवरण नहीं केवल इशारा रहेगा, जो रसिक हैं उनके आनन्दके लिए। उपन्यास साहित्यको जितना समझता हूँ उससे इतनी आशा रखता हूँ कि अगर और कुछ अच्छा नहीं बन पड़ा हो तो कमसे कम असंयत होकर उच्छृङ्खलताका स्वरूप नहीं प्रकट कर बैठा।

सावित्रीके सम्बन्धमें 'पुष्पपत्र' (वैशाख-जेठ ११४) के 'गुरुदेव और यथार्थ वीर' शीर्षक निबन्धमें जो कुछ लिखा है उसे पढ़ा। तुमने ठीक ही लिखा है। लेकिन बहुतेरे इस बातको क्यों भूल जाते हैं कि सावित्री यथार्थमें नौकरानी किसमकी भी नहीं है। पुराणमें लिखा है कि एक बार लक्ष्मी देवीने भी मुसीबतमें पड़ कर एक ब्राह्मणके घरमें दासीका काम किया था। सभी सम्प्रदायोंकी तरह गणिकाओंमें ऊँची-नीची हैं। गणिकाके निकट जो गणिका दासी बनी हुई है उसका और उसकी मालकिनका चाल-चलन एक नहीं भी हो सकता है। इसको देख पाना सहज है लेकिन इनको जाननेके रास्तेमें अनेक बाधायें हैं।

तुम्हारी यह बात बहुत ठीक है कि जो निर्विकार होकर स्त्रीजातिकी ग्लानिके प्रचार करनेको ही यथार्थवाद समझते हैं उनमें आदर्शवाद तो है नहीं यथार्थवाद भी नहीं है। केवल गुस्ताखी—न जानते हुए अहंकार। महिलाओंके विरुद्ध कड़ी-कड़ी बातें लिखना बहादुरी हो सकती है लेकिन उस पथपर चलकर सच्चे साहित्यका सृजन नहीं हो सकता। (पञ्चपात्र, भाद्रपद ११५)

१४

[श्री भूपेन्द्रकिशोर रक्षित रायको लिखित]

१ मेइ, ११११

तुम एक मासिक पत्रिकाके प्रमुख संपादक हो। Catchwords का मोह कहीं तुम्हें वशमें न कर ले। क्योंकि इस बातको तुम्हें कदापि नहीं भूलना चाहिये कि विप्लव और विद्रोह एक वस्तु नहीं है। क्या नहीं देखा है कि विप्लव

पराधीन देश स्वाधीन हुआ है? इतिहासमें कहीं नजीर है? विप्लवके अन्दरसे स्वतन्त्र देशमें ही सरकारका रूप अथवा सामाजिक नीति परिवर्तित की जा सकती है। लेकिन मैं नहीं समझता कि विप्लवसे पराधीन देशको स्वाधीन किया जा सकता है। इसका कारण क्या है जानते हो? विप्लवमें वर्गयुद्ध है, विप्लवमें गृहयुद्ध है;—आत्मकलह और गृहविच्छेद है। आत्मकलह और गृहविच्छेदसे और कुछ भी क्यों न किया जा सके देशके परम शत्रुको पराजित नहीं किया जा सकता। विप्लव एकताका विरोधी है। (वेणु, आषाढ़ १९२९)

सामताबेड़ पाणित्रास
जिला हवड़ा
१ पौष, १९२९

भूपेन—नववर्षकी सूचनामें तुम्हारे वेणुको मैं हृदयसे आशीर्वाद देता हूँ। जिस जातिका साहित्य नहीं है उसकी दरिद्रता कितनी बड़ी है इस पुराने सत्यको वर्तमान कालमें नाना उत्तेजनाओंके कारण प्रायः हम भूल जाते हैं। उसका फल यह हुआ कि हीनताका अन्धकार जातीय जीवनमें निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है। समाजमें कूड़ा बहुत जमा हो गया है। दुःख की सीमा नहीं इस बातको हम सभी जानते हैं। लेकिन तुम जो कई लड़के इस छोटी-सी पत्रिकाको केन्द्र बनाकर एकत्र हुए हो तुम लोगोंने नर-नारीकी यौन समस्याको ही सारी वेदनाओंके ऊपर नहीं रखा है, यही मेरे लिए सबसे अधिक आनन्दका कारण है। पराधीनताका दुःख ही हमारी सभी वेदनाओंसे बड़ा होकर तुम्हारी इस पत्रिकामें बार-बार आता है। कामना करता हूँ इस पत्रिकामें इस नीतिका कोई व्यतिक्रम न हो। (वेणु, वैशाख १९३०)

सामताबेड़, पाणित्रास
जिला हवड़ा

परमकल्याणीयेषु। भूपेन कुछ दिन पहले तुम्हारी चिट्ठी मिली। लेकिन इसके बाद ही कुमिल्ला जाना पड़ा इसलिए जवाब देनेमें देर हो गई। कुछ सोचना

मत। कब तुम लोग लौटोगे और फिर कब तुम लोगोंसे मुलाकात होगी इस निर्जन परदेशी भवनमें बैठा अक्सर सोचता रहा हूँ। साहित्यको लेकर तुम लोगोंसे परिचय हुआ है और अपने देशको तुम अन्तरसे प्यार करते हो यही जानता हूँ। लेकिन किस अपराधमें बन्द हो समझमें नहीं आता। प्रार्थना करता हूँ शीघ्र रिहा होकर फिर साहित्यमें लौट सको।

'शेष प्रश्न' उपन्यास तुम्हें इतना अच्छा लगा है जानकर बड़ी खुशी हुई। इसमें बहुतेरे सामाजिक प्रश्नोंकी आलोचना है पर समाधानका भार तुम लोगोंपर है। भविष्यकी इस कठिन जिम्मेदारीकी सम्भावनाने ही शायद तुम लोगोंको बहुत आनन्द दिया है। मगर मेरी धारणा है कि यह किताब बहुतोंको निराश करेगी उन्हें किसी भी तरहका आनन्द नहीं मिलेगा। एक तो गल्पांश बहुत कम है बड़ी तेजीसे समय काटना या नौकरी छुड़ाकर तरह निश्चिन्त हो आरामसे अधमुँदी आँखोंसे आनन्दानुभव करना नहीं हो सकता है। इसके अच्छे लगनेकी बात नहीं। फिर भी यही सोचकर लिखा था कि कुछ लोग तो समझेंगे और मेरा काम इसीसे चल जायगा। सभी प्रकारके रस सभीके लिए नहीं होते। अधिकारी-भेदको मैं मानता हूँ।

और एक बात याद थी कि यह अति आधुनिक साहित्य है। सोचा था इस दिशामें एक संकेत छोड़ जाऊँगा। बूढ़ा हो गया हूँ लिखनेकी शक्ति अस्तंगतप्राय है। फिर भी सोचता हूँ कि आगामी कलके तुम लोगोंको शायद इसका आभास मिल जायगा कि गन्दा किये बगैर ही अति आधुनिक-साहित्य लिखा जा सकता है। केवल कोमल-पेलव रसानुभूति ही नहीं बुद्धिके लिए चमत्कारक भोजन उपस्थित करना भी अति-आधुनिक-साहित्यका एक बड़ा काम है। इसके बाद तुम लोग जब लिखोगे तो तुम्हें भी बहुत पढ़ना पड़ेगा बहुत सोचना पड़ेगा। केवल मनोरंजनके हल्के बोझको ढोनेसे ही छुटकारा नहीं मिलेगा।

जेलमें हो तुम्हारे पास बहुत समय है। तुम्हें मेरा यही आदेश है कि इस समयको वृथा नष्ट न करना यह निर्जन-वास जिसमें तुम्हारे बादके जीवनमें कल्याणका द्वार खोल दे। बहुतेरे लोगोंके बीच मनुष्यको पहचानना सीखना। मनुष्यके स्वरूपको पहचानना ही साहित्यकी यथार्थ सामग्री है। इस बातको कभी न भूलना।

बुढ़ापेमें मेरे शरीरको जैसा रहना चाहिए वैसा ही है। मजेमें रहो, निर[...]
रहो, यही आशीर्वाद देता हूँ इति। (४ जेठ, १३३८)

शुभानुध्यायी
श्री शरच्चन्द्र चट्टोपा[...]

१५

[श्री कृष्णेन्दुनारायण भौमिकको लिखित]

कल्याणीयेषु। पत्रिकाके संपादनके बारेमें मेरी राय जानना चाहते हो लेकिन मैंने तो कभी पत्रिकाका संपादन किया नहीं, अतएव वास्तविक अनुभव मुझे नहीं है। पर प्रतिमास बहुतेरी पत्रिकाएँ पढ़ता हूँ इससे यही लगता है कि मासिक पत्रिकाको बहुजनोंमें प्रिय करनेके लिए सबसे बड़ी आवश्यकता होती है रचनाओंकी स्निग्धता और संयमकी। उग्रतामें अभिभूत करनेके संकल्पको लेकर जो कुछ लिखा जाता है, जरा ध्यानसे देखनेपर पता चल जायगा कि उसकी पोशाक तथा बाहरका अतिरेक रसस्रावके लिए पाठकके चित्तको विह्वल कर देनेपर भी वह स्थायी तो होता नहीं बल्कि प्रतिक्रियासे अवसादग्रस्त कर देता है। कहानीमें हो या और किसी चीजमें, अगर देखते हो कि बातें लेखककी अपनी अनुभूतिसे रससे रूप और विशुद्ध होकर रचनामें नहीं आई हैं तो समझ लेना कि उसके भाव और भाषाके आडम्बर चाहे जितने चकाचौंधा देनेवाले क्यों न हों, अन्तःसारशून्य हैं। वे और मनुष्यकी रुचिको आकर्षित करनेवाले [...] टिक नहीं सकेंगे।

इन्टेलेक्चुअल (बुद्धिवादी) कहानी नामक एक बात आजकल प्रायः सुनता हूँ, लेकिन उसका स्वरूप कभी नहीं देखा या देखनेपर भी पहचान नहीं सका। उस दिन अचानक एक कहानी पढ़ी थी। समाप्त करनेपर ऐसा लगा था मानो लेखकके पाण्डित्यके बोझसे रचना पदके बीच ही मुँहके बल गिर पड़ी है। पर ऐसी बात भी न सोचना कि इस वस्तुको पत्रिकामें कभी प्रश्रय मत देना।

कहानीमें बुद्धि शक्तिकी छाप रहना ही दूषणीय है, हृदय शक्तिके असंयमित बाहुल्यसे लेखकका अक्षम बनना ही जरूरी है।

('स्वदेश' आश्विन १३४)

१६

[श्री अतुलानन्द रायको लिखित]

कल्याणीयेषु। श्रावण (१३४) की 'परिचय' पत्रिकामें श्रीमान् दिलीप कुमार रायको लिखित रवीन्द्रनाथके 'पत्र-साहित्यकी भाषा' विषयमें तुमने मेरी राय जाननी चाही है। यह पत्र व्यक्तिगत होनेपर भी जब, जनसाधारणमें प्रकाशित हुआ है तब ऐसा अनुरोध शायद किया जा सकता है। लेकिन कितनी ही बार पुत्रकी लम्बी चिट्ठियोंकी अन्तिम पंक्तिमें 'कुछ रुपये भेजने' की तरह अन्तिम कई पंक्तियोंका वास्तविक कथन अगर यही है कि यूरोप अपनी मशीनों—गन-टोरपेडो-तोप-बन्दूक मान-इज्जतके साथ शीघ्र ही डूबेगा तो अत्यन्त परितापके साथ यही समझूँगा कि उम्र तो बहुत हुई, उस वस्तुको क्या आँखों देख जानेका मौका मिल सकेगा।

पर इनके अलावा कविने और भी भिन्न लोगोंके बारेमें भाषा छोड़ दी है, तुम लोगोंको सन्देह होता है कि उनमें एक मैं भी हूँ। असम्भव नहीं है। इस निबन्धमें कविकी शिकायतका विषय है कि वे 'मतवाले हाथी हैं' 'वे बकवास करते हैं' 'पहलवानी करते हैं', 'कसरत करामात दिखाते हैं', 'मालखम तास करते हैं', अतएव उनकी इत्यादि-इत्यादि।

ये बातें जिस किसीको क्यों न कही जायँ, सुन्दर भी नहीं है और कानोंको प्रिय भी नहीं। व्यंग विद्रूपका आवेग मनमें एक प्रकारका इरिटेशन् (चिड़ चिड़ापन) ला देता है। उससे कथाका उद्देश्य व्यर्थ हो जाता है श्रोताका मन भी खिन्न हो जाता है। यद्यपि क्षोभ प्रकट करना जिस प्रकार अनावश्यक है प्रतिवाद भी उसी प्रकार व्यर्थ है। किनकी बातोंको तोतेकी तरह दुहरा दी, कहाँ पहलवानी की, कौन-सा 'खेल दिखलाया' खुद कविसे इन सारी बातोंको

एकदम अप्रासंगिक है। मेरे बचपनकी बात याद आती है। गाँवके मैदानमें किसीने खबर भर दिया कि अमुक मैलेमें डूब गया है। फिर क्या करना? कहाँ डूबा, किसने कहा, किसने देखा, वह मैला नहीं है गोबर है—सब-कुछ व्यर्थ है। घर आनेपर माताएँ बगैर नहलाए, सिरपर बगैर गंगाजल छिड़के घरमें घुसने नहीं देतीं। क्योंकि वह मैलेमें डूब गया है! यहाँ भी हमारी वही दशा है।

क्या साहित्यकी भाषा' क्या दूसरे विषय इस बातको अस्वीकार नहीं करता कि कविकी इस प्रकारकी अधिकांश रचनाओंको समझनेकी बुद्धि मुझमें नहीं है। उनके उपमा-उदाहरणोंमें फल-फूल आते हैं, हाट-बाजार, हाथी घोड़े जन्तु-जानवर आते हैं। समझमें नहीं आता मनुष्यकी सामाजिक समस्याओंमें नर-नारीके पारस्परिक सम्बन्धके विचारमें वे क्यों आते हैं और आकर किस बातको सिद्ध करते हैं? सुननेमें अच्छे लगनेपर ही तो वे तर्क नहीं बन जाते।

एक दृष्टान्त दूँ। कुछ दिन पहले हरिजनोंके प्रति अन्यायसे व्यथित होकर उन्होंने सर्वोदय-संघके प्रति बापूको एक पत्र लिखा था। उसमें शिकायत की थी कि ब्राह्मणोंकी पाली हुई बिल्ली जब मजेसे उनकी गोदमें जा बैठती है तो इससे उनकी पवित्रता नष्ट नहीं होती—वह आपत्ति नहीं करती। बहुत सम्भव है नहीं करती हो लेकिन इससे हरिजनोंकी कौन-सी सुविधा हुई? कौन-सी बात सिद्ध हुई? बिल्लीके तर्कसे ब्राह्मणोंको यह तो नहीं कहा जा सकता कि बिल्ली जैसे अति-निकृष्ट-जीव तुम्हारी गोदमें जा बैठी तो तुमने आपत्ति नहीं की अतएव अति उत्कृष्ट जीव मैं भी तुम्हारी गोदमें बैठूँगा तुम आपत्ति नहीं कर सकते। बिल्ली क्यों गोदमें बैठती है चींटी क्यों पाँवोंपर चढ़ती है इन तर्कोंको पेश करके मनुष्यके प्रति मनुष्यके न्याय अन्यायका फैसला नहीं किया जा सकता। ये उपमाएँ सुननेमें अच्छी लगती हैं देखनेमें चकाचौंध लगा देती हैं लेकिन परखनेपर जो दाम लगता है वह अकिंचित्कर होता है। विपद् फैक्टरीकी मनोनीत वस्तुओंके उत्पादनकी चमत्कारिता दिखाकर भीम उपमान भी अत्यन्त हितकर है, यह बात सिद्ध नहीं की जा सकती।

आधुनिक कालमें कल-कारखानोंकी नाना कारणोंसे बहुतर लोग निन्दा करते हैं रवीन्द्रनाथने भी की है—इसमें दोष नहीं। बल्कि यही फैशन हो गया है। बहु-निन्दित वस्तुके संसर्गमें जो भाग इच्छासे या अनिच्छासे आ गये हैं,

उनके कारण भी सुख-दुःखोंके कारण भी जटिल हो गये हैं—जीवन-यात्राकी प्रणाली भी बदल गई है। गाँवके किसानोंसे उनका जीवन हूबहू नहीं मिलता है। इस बातको लेकर दुःख किया जा सकता है, लेकिन फिर भी अगर कोई इनकी नाना विचित्र समस्याओंको लेकर कहानी लिखता है तो वह साहित्य क्यों नहीं होगा? कवि भी नहीं कहते हैं कि नहीं होगा। उनकी आपत्ति है केवल साहित्यकी भाषाके उलझनमें। किन्तु इस भाषाका निर्णय किस तरहसे होगा? हमारे या कहनेसे बातचीतसे? रवीन्द्र कहते हैं—निर्णय होगा साहित्यकी चिरन्तन मूल नीतिसे। किन्तु यह 'मूल नीति' लेखककी बुद्धिके अनुभव और सजीव स्वदेश कल्पनाके अलावा किस और कहीं है क्या? चिरन्तनकी दुहाई दलीलके वास्ते दी जा सकती है और कुछ नहीं। वह मृगतृष्णा है।

कविने कहा है, "उन्मादना अतिरिक्तकी भी यही दशा है। मनुष्यके प्राणोंका रूप विचारोंके स्तूपके नीचे दब गया है।" लेकिन प्रत्युत्तरमें अगर कोई कहता है 'उन्मादना-अतिरिक्तकी यह दशा नहीं है मनुष्यके प्राणोंका स्वरूप विचारके स्तूपके नीचे दब नहीं गया है, विचारके स्तूपको ठुकराकर ही उठा है' तो इसे कौन-सी नजीर देकर शुरू किया जायगा? और इसीके साथ एक बात आजकल प्रायः और सुनाई पड़ती है रवीन्द्रनाथने भी उसका यह कहकर बढ़ावा दिया है कि 'अगर मनुष्य कहानीके बहानेमें आता है तो कहानी ही सुनना चाहेगा अगर वह साहित्यिक है।'" बातको स्वीकार करते हुए भी अगर पाठक कहें—हैं हम साहित्यिक हैं लेकिन समय थोड़ा है और उम्र भी बड़ी है। अतएव राजकुमार तथा मेढक-मेढकियोंकी कहानीसे हमारा मन नहीं भरता है तो उनका उत्तर युक्तिसंगत होगा ऐसा मैं नहीं समझता। वे अनायास ही कह सकते हैं कि कहानीमें विचार शक्तिकी छाप रहनेसे ही वह पांक्तेय नहीं रहती या विशुद्ध कहानी लिखनेके लिए लेखकको विचार शक्तिके निर्वासित करनेकी भी आवश्यकता नहीं।

कविने महाभारत तथा रामायणका उल्लेख करके भीष्म और रामके चरित्रों की आलोचना करके दिखाया है कि 'वस्तुतः भीष्म व रामके चरित्र मिट्टीमें मिल गये हैं। इस बातकी मैं आलोचना नहीं करूँगा क्योंकि ये दोनों ग्रन्थ केवल काव्यग्रंथ ही नहीं, धर्मग्रंथ तो हैं ही शायद इतिहास भी हैं। ये दोनों

चरित्र साधारण उपन्यासके बनावटी चरित्रमात्र नहीं भी हो सकते हैं, अतएव, साधारण काव्य-उपन्यासके माप-दण्डसे नापनेमें मुझे हिचक होती है।

पत्रमें इण्टिलेक्ट शब्दके कितने ही प्रयोग हैं। ऐसा लगता है मानो कविने विद्या तथा बुद्धि दोनों अर्थोंमें इस शब्दका प्रयोग किया है। प्राब्लेम शब्द भी वैसा ही है। उपन्यासमें कितने ही प्रकारके प्राब्लेम रहते हैं, व्यक्तिगत, नीतिगत सामाजिक, सांसारिक इसके अलावा कहानीका अपना प्राब्लेम, जो प्लाटसे सम्बन्ध रखता है। इसीकी गाँठ सबसे कठिन होती है। कुमारसम्भवका प्राब्लेम उत्तरकाण्डमें रामचन्द्रका प्राब्लेम डाल्स हाउसमें नोराका प्राब्लेम अथवा योगायोगमें कुमुका प्राब्लेम एक ही जातिके नहीं हैं। 'योगायोग' पुस्तक जब 'विचित्रा'में प्रकाशित हो रही थी और अध्यायके बाद अध्यायमें कुमुने जो हंगामा खड़ा किया था मैं तो समझ ही नहीं पाता था कि उस दुर्दर्ष प्रबल पराक्रान्त मधुसूदनसे उसकी रस्साकसी खत्म कैसे होगी! लेकिन कौन जानता था कि समस्या इतनी सहज थी और लेडी डाक्टर आकर क्षणभरमें उसका फैसला कर देगी। हमारे जफर दादा भी प्राब्लेम बरदाश्त नहीं कर पाते हैं। बड़े तंग रहते हैं। उनकी एक पुस्तकमें इसी तरहके एक आदमीने बड़ी समस्या पैदा कर दी थी लेकिन उसका फैसला दूसरी तरहसे हो गया। फुफकार कर एक जहरीला साँप निकला और उसे काट लिया। दादासे पूछा था कि यह क्या हुआ? उन्होंने उत्तर दिया था कि, क्यों, क्या साँप किसीको नहीं काटता?

अन्तमें और एक बात कहनी है। रवीन्द्रनाथने लिखा है 'इबसेनके नाटकों का इतने दिनोंतक कुछ कम आदर नहीं हुआ है लेकिन क्या अब उनका रंग फीका नहीं हो गया है? कुछ दिनोंके बाद क्या यह दिखाई पड़ेगा? नहीं पड़ सकता है, लेकिन फिर भी यह अनुमान है प्रमाण नहीं। बादमें किसी समय ऐसा भी हो सकता है कि इबसेनका पुराना आदर फिर लौट आवे। वर्तमानकाल ही साहित्यका चरम हाईकोर्ट नहीं है।

१७

[अविनाशचन्द्र घोषालको लिखित]

२५ श्रावण १३४१

कल्याणीयेषु। वातायनके प्रत्येक अंकको मैंने ध्यानसे पढ़ा है। आलस्य या उपेक्षासे कभी दूर नहीं रखा।

सभी विषयोंमें एकमत हो सका हूँ ऐसा नहीं लेकिन अकारण विद्वेष या व्यक्तिगत ईर्ष्याके आक्रमणसे किसी आलोचनाको कभी कलंकित होते देखा है ऐसा नहीं लगता। यह आनन्दकी बात है। लेकिन अगर ऐसा कभी हो भी गया हो जो मेरी नजरोंमें नहीं आया तो उसके सम्बन्धमें आज यही बात कहूँगा कि जो हो गया सो हो गया लेकिन नूतन वर्षके प्रारम्भसे तुम लोगोंको सर्वदा यह याद रखना चाहिए कि रचनामें असहिष्णुता तो बरदाश्त की भी जा सकती है, पर क्रूरता नीचता, असत्य निन्दासे मनुष्यको हीन सिद्ध करनेके प्रयासको पाठक-समाज अधिक दिनोंतक सहन नहीं कर सकता है उसकी नजरोंमें लेखक स्वयं ही धीरे धीरे छोटा होता जाता है, उसकी कलई खुल जाती है। तब पत्रिका की मर्यादा नष्ट होती है उद्देश्य शिथिल हो जाता है, आलोचना निष्फल-परिश्रम हो जाती है —सभी प्रकारसे उसके कल्याणका सामर्थ्य क्षीण हो जाता है। इससे बढ़कर पत्रिकाकी कोई दूसरी अवनति नहीं। केवल असत्य या अन्यायके लिए ही नहीं, इस बातको निश्चित जानना कि कुरूपता कभी दीर्घ जीवी नहीं होती। ('वातायन' २५ श्रावण १३४१)

कल्याणीयेषु। लक्ष्य कर रहा हूँ कि देशकी साप्ताहिक पत्रिकाओंको क्रमशः लोगोंकी उत्सुक और उत्कण्ठ दृष्टि प्राप्त हो रही है। अर्थात् मनुष्य दैनिक पर्यवेक्षणमें इनकी आवश्यकता भी अब अनुभव कर रहा है। आनन्दकी बात है। लेकिन इस प्रतिष्ठाके आसनको केवल दखल करनेसे ही नहीं चलेगा, कामके अन्दरसे अपनी मर्यादा प्रतिदिन सिद्ध करनी होगी निरन्तर याद रखना होगा कि तुम्हारी कर्मशीलता साधारण लोगोंके सौभाग्य और कल्याणको समृद्ध बना

रही है। और किसी दूसरे उपायसे अपने अस्तित्वको कायम रखना पड़के लिए केवल व्यर्थता ही नहीं विडम्बना भी है।

तुम्हें बचपनसे जानता हूं। तुमने अपने आदर्श, अपने अनुभवकी मेरे सामने न जाने कितनी बार चर्चा की है छोटे भाईकी तरह उपदेश माँगा है। जीवन यात्रामें इन सबको तुम भूल न जाओ यही मेरी इच्छा है।

पत्रिकाके चलानेका काम सिर्फ दायित्वका नहीं है, नाना प्रकारसे विस्मय है, भिन्न-भिन्न प्रकारकी प्रतिकूलताओंका सामना करना पड़ता है। निस्सन्देह इनमें अधिकांश ही सामयिक हैं तथापि संयम और सहनशीलताकी अत्यन्त आवश्यकता है। जानता हूँ निडर आलोचना साहित्यिकका प्राण है कर्तव्य विमुखता अपराध है। फिर भी कहता हूँ कि इससे भी कहीं अधिक मूल्यवान् तुम्हारा अपना चरित्र और मर्यादा है। असंयमसे और बुरी बातोंसे अपने कलमको कभी कलुषित न करना। किसीको छोटा बनानेके लिए नहीं, बड़ा बनानेके उद्यममें ही तुम्हारी प्रबुद्ध शक्ति निरन्तर लगी रहे यही प्रार्थना करता हूं। प्रगतिके पथपर तुम्हारी अप्रतिहत विजय होकर ही रहेगी। इति।

७ श्रावण, १३४२

शुभाकांक्षी—

श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

१८

[श्री मतिलाल रायका लिखित]

१० आश्विन, १३४१

परम श्रद्धास्पद ! 'आचार्योंने कहा है, कलाकी साधनाका मूल सूत्र है सत्य, शिव, और सुन्दर। अर्थात् साधना सत्यपर आधारित हो, सुन्दरपर आधारित हो और उसका फल कल्याणमय हो। जो विज्ञानके साधक हैं (तत्त्वज्ञान नहीं कह रहा हूँ—साधारण सांसारिक अर्थ कह रहा हूँ) अर्थात्, जो वैज्ञानिक हैं उनका एकमात्र मन्त्र है सत्य। साधनाका फल सुन्दर मधुर, कल्याणकर

अकल्याण भर हो—किसीमें उनकी आसक्ति नहीं। हो तो वाह वाह नहीं हो तो भी वाह वाह।

लेकिन साहित्य-सेवामें बहुत दिनोंसे लगे रहकर निरन्तर अनुभव करता हूँ कि यहाँ सत्य और सुन्दरमें पग-पगपर विरोध उठ खड़ा होता है। संसारमें जो घटनामें सत्य है, साहित्यमें वह सुन्दर नहीं भी हो सकता है, और जो सुन्दर है वह हो सकता है साहित्यमें लोगोंकी आँखें मिथ्या है। जिसे सत्यके रूपमें जानता हूँ उसे यथाकार मूल रूप देने जाकर देखता हूँ वह बीभत्स कदाकार हो जाता है दूसरी ओर असत्यका वर्णन करनेपर भी सुन्दरका रूप नहीं मिलता है। मंगल अमंगल भी इसी प्रकारका है। साहित्यमें यह प्रश्न अप्रासंगिक है इसे स्वीकार किये बगैर भी तो नहीं रहा जाता।

पूछता हूँ, सत्य अगर सुन्दरका विरोधी होता है कल्याण अकल्याण गौण होता है, साहित्य-साधनामें इस समस्याका समाधान किस प्रकारसे होगा?

भवदीय—श्री शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
('प्रवर्तक' फाल्गुन १३४४)

१९

[श्री पशुपति चट्टोपाध्यायको लिखित]

तुम्हारा प्रश्न है—मैं नाटक क्यों नहीं लिखता? शायद तुम्हारे मनमें यह जिज्ञासा दो कारणोंसे आई है। प्रथम नाट्यकार और दूसरे ग्रन्थकारों द्वारा रचित उपन्यासोंके नाट्यरूपदाता श्रीयुक्त योगेश चौधरीने हालमें 'वातायन' पत्रिकामें बंगला नाटकके सम्बन्धमें जो मन्तव्य प्रकट किया है उसे तुम पूरी तरह नहीं मान सके और दूसरी बात है तुम निरन्तर जिन नाटकोंका अभिनय देखा करते हो उनके भाव भाषा परिवेष्टन इत्यादिको विचारकर रंगमंचपर तुम्हारे मनमें यह बात आई है कि शरत्चन्द्र नाटक लिखे तो शायद रंगमंचके चेहरेमें कुछ परिवर्तन हो सकता है।

रही है। और किसी दूसरे उपायसे अपने अस्तित्वको कायम रखना चाहनेके लिए केवल व्यर्थता ही नहीं विडम्बना भी है।

तुम्हें बचपनसे जानता हूँ। तुमने अपने आदर्श, अपने अनुभवकी मेरे सामने न जाने कितनी बार चर्चा की है छोटे भाईकी तरह उपदेश माँगा है। जीवन-यात्रामें इन सबको तुम भूल न जाओ यही मेरी इच्छा है।

पत्रिकाके चलानेका काम सिर्फ वाणिज्यका नहीं है नाना प्रकारसे विघ्नमय है, *भिन्न-भिन्न प्रकारकी प्रतिकूलताओंका सामना करना पड़ता है।* निस्सन्देह इसमें अधिकांश ही सामयिक हैं तथापि संयम और सहनशीलताकी अत्यन्त आवश्यकता है। जानता हूँ, निडर आलोचना साहित्यका प्राण है कर्तव्य विमुखता अपराध है। फिर भी कहता हूँ कि इससे भी कहीं अधिक मूल्यवान् तुम्हारा अपना चरित्र और मर्यादा है। मतोन्मत्तसे और बुरी बातोंसे अपने कलमको कभी कलुषित न करना। किसीको छोटा बनानेके लिए नहीं, बड़ा बनानेके उद्यममें ही तुम्हारी प्रबुद्ध शक्ति निरन्तर लगी रहे यही प्रार्थना करता हूँ। प्रगतिके पथपर तुम्हारी अप्रतिहत विजय होकर ही रहेगी। इति।

७ श्रावण १३४२

शुभाकांक्षी—

श्री शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

१८

[श्री मतिलाल रायका लिखित]

१७ आश्विन, १३४१

परम श्रद्धास्पद! आचार्योंने कहा है कलाकी साधनाका मूल तत्त्व है सत्य शिव और सुन्दर। अर्थात् साधना सत्यपर आधारित हो सुन्दरपर आधारित हो और उसका फल कल्याणमय हो। जो विज्ञानके साधक हैं (तत्त्वज्ञान नहीं कह रहा हूँ—साधारण सांसारिक अर्थ कह रहा हूँ) अर्थात् जो वैज्ञानिक हैं उनका एकमात्र मन्त्र है सत्य। साधनाका फल सुन्दर-असुन्दर कल्याणकर

अवसर पर हो—जिसमें उनकी आपत्ति नहीं। हो तो मुझे पता नहीं है सो भी पता नहीं।

लेकिन साहित्य-सेवामें बहुत दिनोंसे मैं रहकर निरन्तर अनुभव करता हूँ कि यहाँ सत्य और सुन्दरमें एक प्रकार विरोध उठ खड़ा होता है। संसारमें जो एकान्त सत्य है साहित्यमें वह सुन्दर नहीं भी हो सकता है और जो सुन्दर है वह हो सकता है साहित्यमें जिसको स्थान मिला है। जिसे सत्यके रूपमें जानता हूँ उसे ज्यों का त्यों मूल रूप में लिखकर देखता हूँ वह वीभत्स कदाकार हो जाता है कुछ भाग सत्यका वर्जन करनेपर भी सुन्दरका रूप नहीं मिलता है। सौन्दर्य उपलब्धि भी इसी प्रकारकी है। साहित्यमें यह प्रश्न अत्यावश्यक है इसे स्वीकार किये बगैर भी रहा नहीं जा सकता।

पूछता हूँ सत्य और सुन्दरका विरोध होता है तब साम्य या वैसादृश्य कैसे होता है साहित्य-दर्पणमें इस समस्याका समाधान किस प्रकार हुआ?

भवदीय—श्री शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
('प्रवर्तक' फाल्गुन, १३४४)

१९

[श्री पशुपति भट्टाचार्यको लिखित]

तुम्हारा प्रश्न है—मैं नाटक क्यों नहीं लिखता? मेरे विचार तुम्हारे मनमें यह जिज्ञासा दो कारणोंसे आई है। प्रथम नाट्यकार और दूसरे समालोचकों द्वारा रचित रचनाओंके मातृरूपधारा श्रीयुत योगेश चौधरी इनमें 'आनन्द बाजार' पत्रिकामें देशका नाटकके सम्बन्धमें जो मन्तव्य प्रकट किया है उसे तुम पूर्ण सत्य नहीं मान सके और दूसरी बात है तुम निरन्तर जिन नाटकोंका अभिनय देखा करते हो, उनके भाव भाषा परिकल्पना इत्यादिका विचारकर देखनेसे तुम्हारे मनमें यह बात आई है कि शरत्चन्द्र नाटक लिखें तो शायद रंगमंचके चालमें कुछ परिवर्तन हो सकता है।

तुम्हारे प्रश्नके उत्तरमें मेरी पहली बात यह है कि मैं नाटक नहीं लिखता। इसका कारण है मेरी अक्षमता। दूसरी इस अक्षमताको अस्वीकार करके अगर नाटक लिखता हूँ तो मेरी मजदूरी नहीं पोसायगी। यह मत समझना कि केवल रुपयेकी दृष्टिसे ही यह लिख रहा हूँ। संसारमें उसकी आवश्यकता है, लेकिन एकमात्र आवश्यकता नहीं इस सत्यको एक दिन भी नहीं भूलता हूँ। उपन्यास लिखनेपर मासिक पत्रिकाओंके सम्पादक आग्रह उसे ले जायँगे उपन्यास छापनेके लिए प्रकाशकोंकी कमी नहीं होती कमसे कम अबतक नहीं हुई है और उस उपन्यासको पढ़नेवाले भी मिलते रहे हैं। कहानी लिखनेके नियमोंको मैं जानता हूँ कमसे कम 'लिख दीजिये' कहकर किसीका दरवाजा खटखटानेकी दुर्गति नहीं हुई है। लेकिन नाटक! रंगमंचके अधिकारी ही इसके अन्तिम हाईकोर्ट हैं। सिर हिलाके अगर कहते हैं कि इस जगह ऐक्शन कम है,—दर्शक नहीं स्वीकार करेंगे या यह नाटक नहीं चल सकता तो उसे चलानेकी कोई सूरत नहीं। उन्हींकी राय इस विषयमें अन्तिम है। क्योंकि वे विशेषज्ञ हैं। रुपया देनेवाले दर्शकोंकी एक-एक बातको वे जानते हैं। अतएव इस मुसीबतमें जान बूझकर खुद पड़नेमें हिचक होती है।

नाटक शायद मैं लिख सकता हूँ। कारण नाटककी जो अत्यन्त प्रयोजनीय वस्तु है—जिसके अच्छी नहीं होनेसे नाटकका प्रतिपाद्य किसी भी तरह दर्शकके हृदयमें प्रवेश नहीं करता है—उस कथोपकथनको लिखनेका अभ्यास मुझे है। बात कैसे कहनी चाहिए, कितनी सरल बनाके कहनेसे वह मनपर गहरा असर करती है इस कौशलको नहीं जानता ऐसा नहीं। इसके अतिरिक्त अगर चरित्र या घटना निर्माणकी बात करते हो, तो उसे भी कर सकता हूँ ऐसा मुझे विश्वास है। नाटकमें घटना या सिचुएशन तैयार करना पड़ता है चरित्र-सृजनके लिए ही। चरित्र-सृजन दो तरहसे हो सकता है—एक है प्रकाश अर्थात् पात्र पात्री जो हैं, उसीको घटना-परम्पराकी सहायतासे दर्शकोंके सम्मुख उपस्थित करना। और दूसरा है—चरित्रका विकास अर्थात् घटना-परम्पराके अन्दरसे उसके जीवनमें परिवर्तन दिखाना। वह अच्छाईकी ओर हो सकता है और बुराईकी ओर भी। मान लो कोई आदमी बीस साल पहले विलायत होटलमें खाना खाता था, झूठ बोलता था और दूसरे बुरे काम भी करता था। आज

वह धार्मिक वैभव है—बंकिमचन्द्रके ग्रन्थोंमें पढ़कर भक्तोंका रस गिर जाता है तो उसे हाथसे पोंछ देता है। फिर भी हो सकता है कि यह उसका दिखावटीपन न हो सच्चा आन्तरिक परिवर्तन हो। हो सकता है बहुतेरी घटनाओंके आवर्तमें पड़कर दस-पाँच भले आदमियोंके सम्पर्कमें आकर उनसे प्रभावित होकर आज वह सचमुच ही बदल गया हो। अतएव वह बीस बरस पहले जो था वह भी सत्य है और आज जो हो गया है वह भी सत्य है। लेकिन जैसे-तैसे करनेसे काम नहीं चलेगा—नाटकके अन्दरसे, रचनाके अन्दरसे पाठक या दर्शकके सम्मुख इसे यथार्थ बनाना होगा। उन्हें ऐसा नहीं लगना चाहिए कि रचनामें इस परिवर्तनका कारण कहीं ढूँढ़नेपर भी नहीं मिलता है। काम कठिन है। और एक बात। उपन्यासकी तरह नाटकमें स्वाधीनपन नहीं है, नाटकको एक निश्चित समयके बाद आगे नहीं बढ़ने दिया जा सकता। एकके बाद दूसरी घटनाको सजाकर नाटकको दृश्यों या अंकोंमें विभाजित करना,—यह भी चेष्टा करनेपर शायद दुःसाध्य नहीं होगा। लेकिन सोचता हूँ करके क्या होगा? नाटक जो लिखूँगा उसे मंचस्थ करेगा कौन? शिक्षित समझदार अभिनेता-अभिनेत्री कहाँ हैं? नाटककी नायिका बनेगी, ऐसी एक भी तो अभिनेत्री नजर नहीं आती है। इसी प्रकारके नाना कारणोंसे साहित्यके इस दिशामें पग रखनेकी इच्छा नहीं होती। आशा करता हूँ किसी दिन वर्तमान रंगमंचकी यह कमी दूर होगी लेकिन शायद हम उसे आँखोंसे नहीं देख सकेंगे। अवसर ही अगर वास्तविक प्रेरणा आए तो शायद कभी लिख भी डालूँ। लेकिन अधिक आशा नहीं रखता। ('नाच घर', १८ आश्विन १३४१)

२०

[जहानआरा चौधुरीको लिखित]

११ माघ, १३४१

तुमने अपनी वार्षिक पत्रिकामें थोड़ा-सा कुछ लिख देनेके लिए अनुरोध किया है। मेरी वर्तमान अवस्थामें शायद थोड़ा ही लिखा जा सकता है।

तरुण मित्रका चेहरा विवर्ण हो उठा। बोले क्या तब इसी तरहका असहयोग (Non-co-operation) चिरकाल चलेगा?

बोला, नहीं, चिरकाल नहीं चलेगा; क्योंकि, जो साहित्यके सेवक हैं उनकी जाति उनका सम्प्रदाय अलग नहीं मूलमें, इसमें वे एक हैं। उसी सत्यकी उपलब्धि करके इस अवांछित सामयिक अन्तरको आज तुम्हीं लोगोंको खत्म करना होगा।

मित्रने कहा, अबसे इसीकी चेष्टा करूँगा। बोला— करना। अपनी चेष्टाके बाद भगवान्‌के आशीर्वादका प्रतिदिन अनुभव करोगे।

['वर्षवाणी' तृतीय वर्ष १३४२]

२१

[काजी वदूदको लिखित]

बाजे शिवपुर, हवड़ा
१०—३—१९१८

सविनय निवेदन है कि दो दिन पहले आपका पत्र और 'मीर परिवार' मिले। अन्तिम कहानी 'रमीर'को छोड़कर बाकी तीनों कहानियाँ पढ़ ली हैं। और-एक कहानी पढ़ कर आनन्द पाना और प्रशंसा कर सकना दोनों ही मानो कठिन हो गया है। पुस्तक उपहार पाकर ग्रन्थकारको दो अच्छी बातें कहने और सर्वान्तःकरणसे उत्साह देनेका मौका न पानेके कारण अतिशय कुण्ठित रहता हूँ। आपने मुझे वह सुअवसर दिया है इसलिए धन्यवाद देता हूँ। सचमुच ही मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। अगर यह आपकी पहली चेष्टा है तो भविष्यमें आपसे बहुत अधिक आशा की जा सकती है इसे कहनेकी आवश्यकता नहीं।

अपनी रचनामें आपने उर्दू शब्दोंका व्यवहार करके अच्छा ही किया है। अन्यथा मुसलमान पाठक-पाठिका कभी इसे अपनी मातृ-भाषा समझकर निःसंकोच रूपसे स्वीकार नहीं कर पाते। उन्हें बारम्बार यही लगता कि यह

हिन्दुओंकी भाषा है, उनकी नहीं। इन दो अलग-अलग बसनेवाली जातियोंमें साहित्यिक मिलन स्थापित करनेका शायद यही सबसे अच्छा तरीका है। हाँ, सब साहित्यिक इस मतके पक्षमें नहीं, पर मैं इसी तरहकी रचनाका पक्षपाती हूँ।

पर आपको एक बात स्मरण करा देनेकी जरूरत मालूम करता हूँ। मैं बहुत दिनोंसे यह व्यापार कर रहा हूँ। हो सकता है कि थोड़ा-बहुत अनुभव भी संचय किया हो। आशा करता हूँ यथोचित उपदेश देनेके कारण क्षुब्ध नहीं होंगे। बात यह है कि सभी जातियोंमें भले-बुरे आदमी हैं। हिन्दुओंमें भी हैं, मुसलमानोंमें भी हैं। इस बातको कभी न भूलें और एक बात याद रखें कि ग्रन्थकार किसी विशेष जाति-सम्प्रदाय या समाजका नहीं होता। वह हिन्दू मुसलमान, ईसाई, यहूदी सब-कुछ है।

भवदीय—
श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

२२

[श्री उमाप्रसाद मुखोपाध्यायको लिखित]

सामताबेड़ पो पानित्रास
जि हवड़ा
१५ अगस्त १९३१

परमकल्याणीयेषु! उमाप्रसाद परसों तुम्हारी चिट्ठी मिली। मेरी सचमुच ही बड़ी इच्छा होती है कि सदाकी तरह इस बार भी और केवल इस बार ही नहीं सारे भविष्यमें तुम सबसे आगे-आगे चलो। अध्ययन अच्छा नहीं हुआ है यह मैं जानता हूँ, फिर भी आशा है कि कोई आसानीसे तुमसे आगे नहीं बढ़ सकेगा।

उसके बादसे मैं कलकत्ता नहीं गया। इधर सारी परिधिमें बैठे-बैठे दिन कट जाते हैं लेकिन एक बार घरका मुँह देख आनेपर सँभलनेमें पाँच-सात दिन लग जाते हैं।

बीत होती है। अधिक न होनेपर भी ५१ हजार रुपयेका जमानतदार हूँ। सोचा है कि भारत लक्ष्मीमें शामिल होकर इसे चुका दूँगा। वे मुझे चौथाई हिस्सा देंगे। सब सांसारिक बुद्धिवाले जैसा आचरण करते हैं मैं भी वैसा ही करूँगा। अर्थात् ठगा नहीं जाऊँगा। दशहरेके बाद ही सारी बातें वकीलोंके साथ तय करूँगा। लेकिन इसी बीच साहित्यिक परिचित-अपरिचित बहुतसे लोग लिख रहे हैं कि उनकी रचना लेकर पेशगी रुपये भेजूँ। हाय इतनी शक्ति अगर होती। किन्तु इसी शक्तिकी मुझे परम आवश्यकता है।

बहुत दिनोंसे तुम्हें नहीं देखा है। तुम लोगोंकी बीमारी अगर अच्छी हो गई हो तो एक बार चले क्यों नहीं आते? मेरा स्नेहाशीर्वाद लेना।

—दादा

---

२४ अश्विनीदत्त रोड काली घाट,
कलकत्ता
१२ कार्तिक, १३४१

कल्याणीयेषु। चिरु, कल गाँवसे यहाँ आनेपर तुम्हारी चिट्ठी मिली। जल्दीमें लौट आना पड़ा क्योंकि यहाँ खबर पहुँची कि बड़ी बहू न्यूमोनियासे बीमार पड़े हुए हैं। लेकिन मामला बहुत आगे नहीं बढ़ा है। आशा है जल्द ही अच्छी हो जायेंगी। नहीं तो गरीब आदमी हूँ कलकत्तेके इलाजका भारी खर्च बरदाश्त नहीं कर सकूँगा।

मेरे ६१ वें वर्षके आरम्भपर कविने आशीर्वाद दिया है—मधुर भाषामें दिल खोलकर मंगलकामना की है। आनन्दबाजार पत्रिकामें जितना प्रकाशित हुआ था वह तुम्हें भेज दिया है, असल हाथसे लिखा (आशीर्वाद) मुझे दिया है। तुम्हारे आनेपर उनके दूसरे पत्रोंकी तरह इसे भी रखनेके लिए तुम्हें दूँगा। तब इन पत्रोंको खूब सौंप देना। मैं चंगा नहीं हूँ तभी पर पहलेसे बहुत अच्छा हो गया हूँ। बुखार नहीं है। तुम मेरा आशीर्वाद लेना और तुम्हारे घर भाइयोंमें कोई हो तो उन्हें मेरी शुभेच्छा कहना।

—शुभार्थी श्री शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

२३

[रवीन्द्रनाथ ठाकुरको लिखित]

बाजे-शिवपुर, शिवपुर
११ पौष १३२४

श्रीचरणेषु। आज हम आपके पास आ रहे थे। लेकिन रास्तेमें श्रीयुक्त प्रमथ बाबूके यहाँ टेलीफोन करनेपर पता चला कि आप बोलपुरमें हैं। सायंकालमें शायद आयेंगे। लेकिन उस वक्त मुलाकात करना कठिन है।

मेरे मुहल्लेमें एक छोटी-सी साहित्य-सभा है। एक-दो महीनेमें किसीके घर पर उसका अधिवेशन होता है। बहुत ही नगण्य तुच्छ मामला है। फिर भी पिछली बार हमने प्रमथ बाबूको पकड़ा था और वह कृपा कर सभापति बने थे।

कई दिनोंसे हम लगातार बहस करके तय नहीं कर पा रहे हैं कि इस सभामें आपकी पदधूलि पड़नेकी कोई सम्भावना है या नहीं।

इस बार जब घर पर आयें तो अगर अनुमति दें, हम आकर आपसे निवेदन करें।
—सेवक श्री शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

बाजे शिवपुर, हवड़ा
२१ बैसाख, १३२६

श्रीचरणेषु। लड़कोंसे सुना था कि आप मुझसे अतिशय असन्तुष्ट हुए हैं। उत्तेजनामें आकर गुस्सेमें हो सकता है कि आपके बारेमें कोई मिथ्या बात कही हो। लेकिन जो व्यक्ति इसकी सफाई-सच्चाईकी जाँच करने आपके पास गए थे उन्होंने भी कुछ कम अपराध नहीं किया है। इसलिए क्रोधसे आप क्षुब्ध हुए हैं और कुछ-कुछ बड़ी पंजाबवाली चिट्ठीके लिए। उसके न लिखनेसे यह सब नहीं समय—इन बातोंको मैंने उस समय ठीक-ठीक कैसे कहा था मुझे याद नहीं। आज सोचते मैं बनाकर झूठ नहीं बोलता, पर बोलना एकदम असम्भव है ऐसा भी नहीं। कमसे कम इन बातोंका तो अक्सर ही कहा है कि

इस बार विलायतसे लौटकर आप बहुत बदल गये हैं और बंगालके लोगोंके प्रति आपका पहला स्नेह और ममत्व अब नहीं है। चरखा असहयोग आदिपर आपकी तनिक भी आस्था या विश्वास नहीं है, इत्यादि।

आपके पाससे एक दिन गुस्सेमें ही मैं चला आया था। इसके बाद ही शायद कुछ झूठी बातोंका प्रचार किया होगा। शायद मेरे मनमें यह भाव था कि लोग गलत समझते हैं तो समझें।

आपके प्रति मैंने बहुत बड़ा अपराध किया है पर प्रथम अपराध होनेके कारण मुझे क्षमा करेंगे। आपके सिवा और किसी बड़े आदमीके यहाँ मैं जान-बूझकर कभी नहीं जाता। पर मेरे लिए उसका रास्ता भी मेरे अपने ही दोषसे बन्द हो गया है। सोचने पर दुःख होता है।

आपके अनेक शिष्योंमें एक मैं भी हूँ; उनकी तरह इतने दिनों तक मैंने भी कभी आपकी निन्दा नहीं की। लेकिन इस बार क्यों भ्रमवश आई, नहीं जानता।

मेरा प्रणाम स्वीकार करें। इति। —सेवक श्री शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

बाजे-शिवपुर, हवड़ा
२६ बैशाख १३३६

श्रीचरणेषु। अपने स्वार्थके लिए आप देशका अमंगल करेंगे इतनी बड़ी निन्दा अगर की ही हो तो उसके बाद फिर मिलकर आपसे क्षमा माँगने जाना केवल विडम्बना ही नहीं है आपका अपमान करना भी है। अतएव आपके पत्रका स्वर इतना कठिन होगा इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं।

मेरे अपराधकी बात जिन लोगोंने आपतक पहुँचाई है उन्होंने कहीं इसकी सीमा नहीं रखी।

इसके बाद मैं क्या कहूँ। मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

सेवक,
श्री शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

बाजे शिवपुर हवड़ा
२ माघ, १३३१

श्रीचरणेषु। हजारों प्रकारके कामोंमें फिलहाल आपको तनिक भी फुरसत नहीं है इस बातको हम सभी जानते हैं। फिर भी दिन भर सोचकर लिखा था कि आज आपके लिए बात करने जैसा ही सबब है एकमात्र उन्हींके जोरसे मेरे भाषणकी सारी त्रुटियाँ ढक जातीं।

सत्येन्द्र जीवित होता तो आपकी इस चिट्ठीको दिखाकर आज आसानीसे उससे गीत लिखा ला सकता था। उसके लिए यह चिट्ठी आदेश जैसी होती। लेकिन वह परलोकमें है और दूसरा कोई नहीं जिससे जाकर कहूँ।

कलकत्ता आनेपर तो आपको दम मारनेकी भी फुरसत नहीं मिलती। उस समय इस बातको लेकर मैं उत्पात नहीं करूँगा। मेरा अशेष प्रणाम स्वीकार करें।

—सेवक
श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

सामताबेड़ पानित्रास हवड़ा
१६ आश्विन, १३३६

श्रीचरणेषु। मेरा दण्डवत् अशेष प्रणाम स्वीकार करें। इस बीच आप नाना गुरुतर कामोंमें फँसे हुए थे और शान्ति निकेतन भी नहीं ठहर सके। इसीलिए प्रणाम निवेदन करनेमें विलम्ब किया।

उमरकी गतिके साथ-साथ आपका जो आशीर्वाद मिला मेरे लिए वह श्रेष्ठ पुरस्कार है। आपका सुन्दरतम दान भी संसारमें किसी भी साहित्यिकके लिए दुर्लभ है। इस दानको सिर माथे लेता हूँ।

मेरी तकदीर अच्छी है। ३१ भाद्रपदको आपका कलकत्ता आना सम्भव नहीं हुआ। आते तो उस दिनका अनाचार देखकर अत्यन्त व्यथित होते और सबसे बढ़कर दुःखकी बात है कि मेरे अपने समवयस्क साहित्यिकोंने ही इस उपद्रवका सूत्रपात किया था। सान्त्वनाकी बात केवल यही है कि इन्हींको यह भोग पसन्द करते हैं, मैं उपलक्ष्यमात्र हूँ। क्योंकि पिछले साल बरसगाँठ उत्सवमें

इन्होंने कुछ कम दुःख देनेकी चेष्टा नहीं की थी। मैं एक दिन स्वयं आपको प्रणाम कर आना चाहता हूँ। केवल संकोचके कारण नहीं आ पाता हूँ, कहीं कोई कुछ समझ न बैठे।

आपकी तबीयत अब कैसी है? इस गिरे स्वास्थ्यको लेकर आप कैसे इतना अधिक शारीरिक परिश्रम कर पाते हैं यही अचरजकी बात है। इति।

सेवक—

श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

२४

[केदारनाथ बन्द्योपाध्यायको लिखित]

बाजे शिवपुर, हवड़ा

११-१०-१९१

महाशयेषु! केदार बाबू, आपका हाल सुन लिया अब इस गरीबका हाल सुनिये।

कुछ दिनसे पीठमें थोड़े-बहुत दर्दका मजा ले रहा था, इससे किसीका कोई लाभ नुकसान नहीं था। न मुझे और न गांगुलीका। अकस्मात् एक दिन रातमें इसीसे नींद टूट जानेपर देखा कि साँस लेना असंभव है। बहुत सेंक-सांक मालिश वगैरह करनेपर सबेरे कुछ अच्छे लक्षण दिखाई भी पड़े तो शाम होते ही ऐसा हुआ कि डाक्टरका बुलाना अनिवार्य हो गया। तबसे भुगत रहा हूँ। इसके ऊपर एक दिन मोटरके स्लिप हो जानेके कारण कमरमें जोरोंका धक्का लगा पर अधीपका भरोसा है। अगर इसमें अधिक भक्ति रह सका तो बुरे दिन दूर होंगे ही। भगवान् श्री देवादिदेवने हमारे लिए वर दिया है कि अर्थका मूल बढ़ेगे और हम कभी कैलाश नहीं जा सकेंगे। उनका प्रारम्भ जबतक नहीं होता तबतक क्या मैं और क्या आप निश्चिन्त रह सकते हैं, किसी प्रकारकी दुश्चिन्ताकी जरूरत नहीं।

इसीलिए सुरेशको भी जवाब नहीं दे सका। जिनकी बारेमें आपका—गुरु

भी तो ठीक पीता हूँ। बड़ा ही सुन्दर और उपभोग्य बन पड़ा है। काव्ये पदावली भी अनिन्दनीय है। प्राय: सभी अच्छे बन पड़े हैं। सुराकी अलमारी करानीके सम्बन्धमें अब भी कहनेका अवसर नहीं आया है। दो-चार रचनाएँ और देखूँ। इस बातको सुनकर यह जितना कहा है उससे कहीं अर्थवाद न समझ बैठें। पद्य चित्र इत्यादिको किसी भी तरह अच्छा नहीं कहा जा सकता है, पर भविष्यमें अच्छा होगा इसकी आशा करना छोड़ता है।

मैं हूँ तो। बिछौने बैठ रहा हूँ। जल्द ही लेकर निकल पड़ूँगा जिधर भी दोनों आँख ले जायँ। बीमारीके कारण इस बार 'भारतवर्ष' के लिए 'लेन देन' नहीं लिख सका। आपका—श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

आपके थामे हुए हाथोंमें पतवार रहा तो और कुछ भी क्यों न हो 'प्रभात-ज्योति' के डूबनेकी सम्भावना नहीं। मुझे लगता है कि इस दुःसमयमें आपको धर्मकी आशा भी कुछ बढ़ा देना कर्तव्य है। और कर्तव्य-पालन जैसी बड़ी वस्तु संसारमें दूसरी नहीं।

बाजे शिवपुर, हवड़ा
१८-११-१९२०

श्रद्धास्पदेषु। केदारबाबू, आपकी चिट्ठी लौटकर भागलपुरसे मिली। आपके साथ मेरा व्यवहार काफी निन्दनीय हो गया। लेकिन मजबूर होकर ही ऐसा हुआ। आशा है भविष्यमें फिर कभी ऐसा नहीं होगा। पहली बात है बीमारीमें बिस्तरपर पड़ा था। कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। इसके बाद जब शरीर स्वस्थ हुआ तो मुझे उपमग दिखाई पड़ा। आपके लिए रचना इस महीने भेज सकता था पर भारतवर्षमें न भेजनेके कारण आप लोगोंको भी न भेज सका। उनमें न देकर आप लोगोंको देनेसे उनको अतीव व्यथा ही नहीं पहुँचती अपमान भी होता।

इस महीनेसे फिर सब-कुछ नियमित होगा। मुझे लेकर जो भी और कारबार करते हैं उन्हें इसी तरह भुगतना पड़ता है। मैं केवल खुद ही अभ्यास नहीं करता और पाँच आदमियोंको भी विड़म्बित करता हूँ। इसे आप लोग निज गुणसे क्षमा करें। रामार्थ।

आप कैसे हैं? कभी-कभी खबर दिया करें। मैं जितनी जल्दी हो सकेगा भेज रहा हूँ। इस विषयमें इस बार निश्चिन्त रह सकते हैं।

दूसरे मित्रोंको मेरा नमस्कार कहें और खुद भी लें। आप लोगोंका—

शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

बाजे शिवपुर, हवड़ा
६ अप्रैल, १९२४

प्रियवरेषु! केदार बाबू, मेरे आचरणसे, मेरी बातोंका मेल नहीं बैठेगा। इसलिए अगर कहूँ कि कितनी ही बार मन ही मन सोचा है कि कहीं अचानक मुलाकात हो जाय तो दोनोंको ही न जाने कितनी प्रसन्नता होगी। इस बातपर शायद आपको विश्वास न हो। आपको कभी चिट्ठी नहीं लिखता, एक प्रकारसे *किसीको नहीं लिखता। लेकिन आप मुझसे कितना स्नेह करते हैं इस बातको* एक दिनके लिए भी नहीं भूला।

जन्मतारीख खबर पाकर मेरे लिए दीर्घजीवनकी कामना की है, इसके अन्दर की वस्तु भूलनेकी नहीं।

लेकिन दीर्घजीवनकी प्रार्थना क्यों? आपसे सच कह रहा हूँ कि अगर कल भोर जानेके लिए बुलावा आ जाय तो 'भैया कल जाना—एक दिन बाद जाऊँगा' यह नहीं कहूँगा।

बहुत दिनोंतक जिया। अब धीरे धीरे चल देना ही देखने-सुननेमें शोभन होगा। क्या शोभन नहीं होगा? मेरी कुण्डलीमें लिखा है कि ४९ पूरा होनेके पहले जाना किसी भी दशामें नहीं होगा। मैं कहता हूँ कि बाबा कुछ दिन हाबर माफी दे दो! माफी पानेकी विधि तो अंग्रेजोंकी फौजमें भी है। कुछ छूट दे दो।

केदार बाबू, मैं श्रान्त हो गया हूँ, इसके अलावा कोई खास रोग-व्याधि भी नहीं है। लोग मुझे निरन्तर सताना ही चाहते हैं।

आप कैसे हैं? काशीमें आप क्यों नहीं रहते? इस शहरमें एक मुश्किल यह है कि परिचितोंका मुँह रोज-रोज देखनेको मिल जाता है।

कभी-कभी यों ही अपना समाचार दें। मेरी श्रद्धा और नमस्कार लें।

आपका सेवक—श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

बाजे-शिवपुर, हवड़ा
१४-१०-१९२४

प्रियवरेषु। आज सबेरे आपकी चिट्ठी मिली। नाना कामोंमें व्यस्त रहता हूँ। प्रति दिन बहुतेरी चिट्ठियाँ मिलती हैं। पर कभी कभी आपकी लिखी कुछ पंक्तियाँ मुझे जो आनन्द देती हैं वह सचमुच ही दुर्लभ है। प्रीतिके अन्दरसे आते हुए वह मानो बहुत-कुछ साथ लाती हैं। केदार बाबू आदमीके सबसे प्यारको मैं समझता हूँ। इसमें मैं अधिक भूल-चूक नहीं करता हूँ। आपका शरीर ठीक नहीं है। माना बड़ा अस्वस्थ ही वह क्षीण हो गया। किसी दिन अगर वह बोझ ढोनेसे इन्कार कर दे तो मैं हाय हाय नहीं करूँगा। पर व्यथा पहुँचेगी। तब नई रचनाओंके साथ-साथ निरन्तर यही लगेगा कि एक ऐसा आदमी नहीं रहा जिसमें इस रचनाको ग्रहण करनेका हृदय था शक्ति थी। अपनी नीची रचनाओंके सम्बन्धमें आपसे कभी कुछ भी नहीं कहा। लेकिन आपका जहाँ जो कुछ प्रकाशित हुआ है सब कुछ पढ़ा है। प्रशंसाके बदले प्रशंसा करनेमें मुझे बड़ा संकोच होता था। निरन्तर यही डरता था कि कहीं आप विश्वास न करें कहीं आपके आत्मसम्मानमें ठेस न लगे।

जब भी आयेगा दशहरा भी आयेगा—एक दिन पर आप भी नहीं आयेंगे और मैं भी नहीं। आप उमरमें मुझसे बड़े हैं। आप मुझे आशीर्वाद देंगे। मेरे लिए वह दिन दूर न हो। मैं बहुत श्रान्त हूँ। तुच्छ सुख तुच्छ दुःख कभी हँसना कभी रोना—मेरे लिए बिल्कुल पुराना हो गया है। ४८ सालकी उम्र हुई—बहुत गई। मेरी बड़ी इच्छा है कि इसके बाद अब क्या पाना बाकी रह गया है उसके लिए अधिक दिनकी आवश्यकता नहीं समझता हूँ। आप मुझे आशीर्वाद दें। उसके सम्मुख हो अगर आ गये हों तो आपका सच्चा आशीर्वाद मेरे लिए फलित होगा।

—आपका श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

सामताबेड़,
पानित्रास पोस्ट, जिला हवड़ा
८ वैशाख, १३३३

प्रियवरेषु। केदार बाबू, कई दिन हुए आपका एक पोस्टकार्ड मिला। पत्र छोटा होनेपर भी स्नेहसे भरा हुआ है। नहीं जानता हूँ कि आपने मुझसे प्यार क्यों किया। जिन गुणोंके कारण मनुष्य मनुष्यको प्यार करता है उनमेंसे मेरे पास कोई भी नहीं है। कमसे कम त्रुटियाँ इतनी अधिक हैं कि उनकी गिनती नहीं।

उस दिन दिलीपकुमार रायको रवि बाबूने लिखा था "सुना है कि शरत् अपने कानूनके अनुसार अपनेको किसी द्वीपान्तरमें चालान करके निस्संग बन्दी मत-व्रत करके बैठे हुए हैं—उनका पता नहीं जानता तुम अवश्य ही जानते होगे। अतएव मुलाकात करके या पत्र द्वारा लिखना कि वह कहीं भी क्यों न रहें अन्तःकरणसे उनके कल्याणकी कामना करता हूँ।"

केदारबाबू, बन्दी-व्रत ही लिया है। शहरमें रहूँ या गाँवमें रहूँ, मैं संसारके स्वार मार्गोंसे दूर हो गया हूँ।

स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन-गिरता जा रहा है। आपको शायद याद होगा कि मेरी कुण्डलीमें ५१ वें वर्षमें जानेकी बात लिखी है। अब उसमें अधिक देर नहीं है सिर्फ वर्षकी देर है। ईश्वर वैसा ही करें। अब वह मेरी भ्रान्तिको आगे न बढ़ायें।

कानपुर जानेके एक दिन पहले अचानक कई बार कै हो जानेसे पेटमें इतना दर्द होने लगा कि डाक्टरके कहनेपर ५-६ दिन बिस्तरपर पड़ा रहा। अब वैसी हालत नहीं है। अब यथार्थ ही आपसे एक बार मुलाकात करनेकी बहुत ही इच्छा होती है। गर्मी यदि इतनी अधिक न पड़ती तो मैं काशी जानेके लिए आपको किराएपर मकान लेनेके लिए अनुरोध करता।

अब कुछ नहीं करता हूँ। रूपनारायणके तीरपर घर बनाया है। ईजी चेयरपर दिन-रात पड़ा रहता हूँ।

हरिदास भाईसे मुलाकात हो, तो मेरा आन्तरिक स्नेह आशीर्वाद है।

प्रियपात्र अच्छा हूँ। सामान्य शिकायतके अलावा विशेष अभियोग नहीं है। मेरा श्रद्धापूर्ण नमस्कार लें। इति।—श्रीशरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय।

सामताबेड़ पानित्रास
२२ कार्तिक १३३३

प्रियवरेषु। आपकी चिट्ठी मिली। केदार बाबू करनेके लिए अब कुछ नहीं है। परंतु एक पशु-पक्षीकी मृत्यु भी जिसने सही नहीं जाती उसके पास कहनेके लिए है ही क्या! आप लोगोंके पास जाकर बैठनेकी बड़ी इच्छा होती है। और सोचता हूँ कि अन्दर-ही अन्दर मैं इतना दुर्बल था, यह तो नहीं जानता था। इस व्यथा (भ्रातृवियोग) को कैसे सहूँगा? —आपका शरत्

सामताबेड़, पानित्रास
१३-२-१९२७

परमश्रद्धास्पदेषु। केदार बाबू मैं तो अब भी जिन्दा हूँ। मेरा नमस्कार लें। और आप? हैं न? जिन्दा रहे तो समाचार दें। नहीं है तो क्या करेंगे? उस हालतमें जवाब न मिलनेपर मुझे क्रोध नहीं आयेगा। यथार्थ ही मेरा मन इतना उदार और क्षमाशील हो गया है। पहिलो हैं या पहले ही चली गई है!

—आपका शरत्

सामताबेड़ पानित्रास
२९ कुआर, १३३४

प्रियवरेषु। नमस्कार करनेका समय हो गया है। इसीलिए काशी जाना एक प्रकारसे तय है। उसके लिए चिट्ठी लिख देता हूँ। बस, जवाब लिखनेकी देर है।

लेकिन आप न रहे तो? बाबा विश्वनाथके कुछ दिन अनुपस्थित रहनेसे भी मैं आपत्ति नहीं करूँगा, लेकिन आपकी अनुपस्थितिमें काशीमें एक दिन भी

मेरे लिए बोझ हो जायगा। कृपा करके मेरे निवेदनको अतिशयोक्तिकी कोटिमें डालकर निश्चिन्त न रहें। मैं जानता हूँ कि मुझे आप समझते हैं। इति।

—आपका शरत्

सामताबेड़ पानित्रास पोस्ट
१ जून, १९२८

प्रियवरेषु। न जाने कितने दिनोंके बाद आपकी लिखावट देखनेको मिली। सबसे पहले यह बात मनमें आई कि प्यार जहाँ सच्चा है जहाँ आन्तरिक वस्तु है वहाँ कोई भ्रम नहीं है। मन स्वयंसिद्धकी तरह मान लेता है। हमारे बाहरके आचरणको देखकर कोई नहीं सोच सकता कि हममेंसे कोई एक-दूसरेको याद करता है। पर मनही मनसे जानता हूँ कि जब कभी आपकी रचना पढ़ी है तभी काशीकी बात याद आ गई है। अन्तिम जीवनमें इतना ही पाथेय रह गया। पहले अकसर इच्छा होती थी कि काशी जाऊँ—अब वह इच्छा नहीं होती। क्योंकि आप काशीमें नहीं हैं। अच्छा केदार बाबू, काशीवास क्या आपने छोड़ दिया? अन्तमें क्या पूर्णियाके जङ्गलमें जा रहेंगे? जानता हूँ कि आपको पूर्णिया छोड़नेमें बहुतसी बाधायें हैं। फिर भी आप उसी जगह हैं, मकान मानकर बुरा लगता है। सोच भी नहीं सकता कि यही वह काशी है। इच्छा होते ही आकर केदार बाबूसे मुलाकात की जा सकती है।

अब लगता है कि सामताबेड़का मेरा आकर्षण मिटा। अब अच्छा नहीं लगता। अब न जहाँ जानेपर ठीक अच्छा लगेगा, यह भी निर्णय नहीं कर सकता। दशहरेके बाद कोई फैसला करूँगा।

आपने 'षोड़शी' की बात किससे सुनी? शिशिरका अभिनय देखा है? कैसा सुन्दर अभिनय करता है! नाटक मेरे उपन्यास 'देना-पावना'से लिया गया है। मनके भावक एक पुस्तक (नाटक) भी छपी है। पढ़ा है? नाटक कैसा भी क्यों न हो अभिनय बहुत अच्छा होता है।

आपकी तबीयत अब कैसी है केदार बाबू? आप अच्छे तो हैं? प्रार्थना

करता हूँ कि आप कुछ दिन और लिखना रोककर कहानियाँ लिखें। मैं आपकी हर एक पंक्ति पढ़ता हूँ। मधुर रचना होनेके कारण नहीं यथार्थमें साहित्यिक आदमीकी रचना होनेके कारण पढ़ता हूँ।

मैं मजा हुआ लिक्खा हूँ। परन्तु लिक्खा रहना पुराना हो गया है प्रति दिन इस बातका अनुभव कर रहा हूँ।

चिट्ठीका जवाब देना न भूलें।

—आपका शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

सामताबेड़ पानित्रास पोस्ट

२७ जुलाई, १९१९

प्रियवरेषु। आज विजया दशमीकी सन्ध्या है। मेरा श्रद्धापूर्ण नमस्कार लें। इस जीवनमें गिने-गिने लोगोंका यथार्थ स्नेह पाकर धन्य हुआ हूँ आप उन्हींमेंसे एक हैं। लेकिन स्नेहकी मर्यादा केवल बढ़ता प्यार आलस्यके कारण ही नहीं रख सका। शायद ऐसा एक भी महीना नहीं बीतता जब आपको याद नहीं करता और बाहरका अपराध जितना बढ़ता जाता है उतना ही सोचता हूँ कि आप मुझे क्षमा गलत न समझेंगे।

१ कार्तिक

'कुश्चका पश्यदर्श' आज सवेरे समाप्त हुआ। अच्छा मेरे जैसे मामूली आदमीको क्या समझकर इतना गौरव प्रदान कर बैठे। स्वदलमें वा साहित्यिकोंका दल क्या सोचेगा।

बहुत अच्छी लगी। तीन-चारको कहानियोंको कोई आज भी इस तरह अन्तरसे अपनाकर मधु लेखनीसे संसारमें प्रकट नहीं करता। इसलिए कलेजेमें एक टीस-सी लगी है। भाषा और शैली मानों भगवान्‌ने आपपर निछावर कर दी है। इस पुस्तकसे एक हितोपदेश भी ग्रहण किया है। रेलका टाइम-टेबिल कर्मचारी जब कहता है कि दिनमें एक बार कापी हाथमें लेकर नहीं बैठनेसे लगता है कि सारा दिन बेकार गया। लिख सकूँ या न लिख सकूँ सोच लेता हूँ कि अपने जीवनमें इस परम सत्य वाक्यको आजसे प्रतिदिन पालन करूँगा। महीनेपर महीने बीत जाते हैं कापी दावात-कलमको हाथसे छूनेको भी जी नहीं चाहता है। आपके आशीर्वादसे जितने दिनतक लिखता हूँ उतने दिनतक प्रति दिन इस बातको याद रख सकूँ।

पुस्तककी एकमात्र त्रुटिका उल्लेख करूँगा। लेकिन आप नाराज न हों, यही अनुरोध है। भगवान्‌ने आपको लिखनेकी शक्ति यथेष्ट दी है पर इस बातको भूलनेसे काम नहीं चलेगा कि ऐश्वर्यवानको मितव्ययी होना चाहिये। कंगालको इसकी जरूरत नहीं पड़ती। केवल लिखते जाना ही नहीं है रुकनेकी बातको भी भूलना नहीं चाहिये।

इस बार काफी कष्ट पा रहे हैं। अच्छी हो जायें तो मुझे दो अक्षर लिख दें। अवश्य चिट्ठीका जवाब अगले दिन ही दूँगा। अन्यथा नहीं होगा। नमस्कार।

—आपका शरत्

पुनश्च। अभी अभी विजयाकी सम्भाषण-कामनाके साथ-साथ जो चिट्ठी आपने लिखी है वह मिली। मेरा भक्तियुक्त नमस्कार और धन्यवाद लें।

सामताबेड़ पानित्रास
२५ कार्तिक १३३६

प्रियवरेषु। कई दिन हुए आपका असीम स्नेह लेकर चिट्ठी आई। सोचा था जरा स्वस्थ होकर जवाब दूँगा। उसका फिर मौका नहीं मिल रहा है। लेकिन दो अक्षर ही क्यों न हों फिर भी आपकी चिट्ठीका जवाब दूँगा। बहुतेरी त्रुटियाँ हो गई हैं अपराधोंका भार और नहीं बढ़ाऊँगा। अतएव लिख रहा हूँ।

गाँवमें रहने आनेका यथायोग्य फलभोग आरम्भ हो गया है। दीवानी और फौजदारी मुकदमोंमें फँसकर भरगर्मीमें दौड़ धूप कर रहा हूँ।

इन तीनों वर्षोंतक निर्लिप्त और निर्विकार भावसे बहुत आरामसे था पर गाँवके दलदलसे बचा नहीं गया, सिरपर सवार हो गया। यह जमींदारोंसे पार पाया जा सकता है पर स्थानीय बहुत बड़े पत्तीदारका दबाव अलग है। बहुत दिनोंकी दिककी वजहसे चार-चार बीघा जमीन भी जमींदारकी दान की गई, किन्तु दो-चार आदमीके नए पत्तीदारसे नहीं सहा गया। गरीब प्रजा धान बोने बल्कि मैं भी लग पड़ा। खबर भेज दी कि मैं जिस कामको हाथमें लेता हूँ उसे छोड़ता नहीं। इसके बाद फौजदारी शुरू हुई। जाने दीजिए, इस बातको।

छोटा बढ़ गया है। सोच रहा हूँ कि इसके किसी तरह समाप्त हो जानेपर भागूँगा। एक प्रकारसे शहर ही सुन्दर है।

कुंदलीका जो विवरण दिया है वह किसी भी दशामें अविश्वसनीय नहीं है। बुखारका एक नशा-सा होता है। फौजदारी मामलेकी तरह उतना अधिक नहीं होनेपर भी उसकी उत्तेजना तुच्छ वस्तु नहीं है। बुखारमें लिखनेसे ऐसा ही होगा। होने दीजिये। इसके बाद शान्त और स्वस्थ होकर उसके बढ़े बढ़े हुए हिस्सेको काट कर निकाल देना होगा। यह काम अच्छा है। मेरा विश्वास है कि इसे दूसरा नहीं कर सकेगा।

उस पुस्तकमें मज़ाकके बहाने न जाने कितनी गहरी और कितनी मधुर बातें हैं। पुस्तक मेरे पढ़नेके कमरेमें बिस्तरपर रहती है। बीच-बीचमें जहाँ पन्ने उलट जाते हैं, वहीं १०-१५ मिनट पढ़ बैठता हूँ।

माधुरी महाशयकी कहानी मैंने नहीं पढ़ी है। 'यमुना' आते ही ऊपर चली जाती है, अक्सर वापस नहीं आती। लेकिन घरमें रहती है। पानेमें कठिनाई नहीं होगी।

पढ़नेकी खबर और किसी दिन दूँगा। लेकिन कहानी आपकी है आपहीने लिखी है। उसकी गुत्थियोंको मैं कैसे सुलझाऊँ ? क्या इतनी विद्या है कि आपके ऊपर टीकाई करनेसे आप बरदाश्त करेंगे ? लेकिन अगर आदेश करते ही हों तो यथासाध्य कहानीका अर्थनाश करना ही होगा। जनवरी महीनेमें काशी आयें तो अच्छीतरहसे आपसीमें उत्तर दूँगा। नमस्कार। आपका—

शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

सामताबेड़ पानित्रास, ७ पौष, १३३७

प्रियवरेषु। सदासे समयके बीत जानेपर ही होश आया। इसीलिए इस जीवनकी सारी काम्य वस्तुएँ हाथके निकट आईं लेकिन मुट्ठीमें नहीं आ सकीं। बारम्बार चिट्ठी लिखनी चाही बार-बार दिन छप बीत गये। वह चिट्ठी आज लिखी गई पर उसका फल नहीं मिला। मुट्ठीके बाहर ही रह गया। मुझे मालूम है कि यह मेरी तकदीरमें लिखा है, इससे बचूँगा कैसे ? प्यार करके

कहा नियम नहीं बनाया है। आपको यह कितना जरूरी समझता हूँ। कोई किरानी दफ्तरमें देरसे आया करता था। साहबके जिक्र करनेपर उसने कहा था—यस सर आई कम लेट, बट आई आफ्टेन गो अर्ली। ऐसा भी होता है केदार बाबू।

आपका शरत्बाबू

२५

[चारुचन्द्र बन्द्योपाध्यायको लिखित]

हवड़ा रेल्वे स्टेशन
१ अप्रैल, १९३०

भाई चारु आज ढाकाके लिए रवाना होकर भी घर लौटा जा रहा हूँ। आज कलकत्तेके गाड़ीवानोंके हड़ताल और सत्याग्रह करनेसे अर्थात् सी एस पी सी ए के अधिकारियोंके विरुद्ध सत्याग्रह करनेके कारण एक भीषण घटना घटी, सार्जेन्टोंसे मारपीट हुई,—सिपाही गोरोंने आकर गोली चलाई। सुनता हूँ, चार आदमी मरे हैं।

यह तो हुई कलकत्तेकी बात। लेकिन हवड़ा शहरमें भी सी एस पी सी ए. है और मैं उसका सभापति हूँ। यह भी एक बड़ा विभाग है। आज हवड़ाके मजिस्ट्रेट और पुलिस सुपरिटेन्डेन्टने किसी तरह हवड़ामें दंगा रोका है पर कहा नहीं जा सकता कि कल क्या होगा। इस विभागका अधिकारी होनेके कारण इस समय मुकाम छोड़कर कहीं जाया नहीं जा सकता है, इसीलिए रास्तेसे लौटा जा रहा हूँ। कल सबेरे ही फिर लौटना पड़ेगा।

जानता हूँ तुम अतिशय दुःखी होगे पर यह न जाना मेरे लिए नितान्त दैविक घटना है।

गोलमाल जरा थमे, अपने दफ्तरका ईमान्दार हूँ। तब तुमसे मुलाकात कर आऊँगा। आशा करता हूँ माफ करोगे। तुम्हारा—शरत्

बाजे-शिवपुर, हवड़ा
२१ अप्रैल, १९२५

भाई चारु, अभी-अभी तुम्हारी चिट्ठी मिली। आज चिट्ठी-पत्री लिखनेके लायक मेरी मानसिक दशा नहीं है फिर भी तुम्हें इस बातको सूचित किये बगैर न रह सका। आनेके समय रास्तेमें एक मृतप्राय बछड़ा पड़ा था उसकी बात तुम्हें शायद याद होगी। इसके बाद ही एक विकट किया हुआ सुरमा दिखाई पड़ा। तुमसे कहता हूँ कि आज आते समय इतनी बातें क्यों दिखाई पड़ रही हैं! तुमने कहा कि गोह भी तो था मैंने कहा कि कहाँ मैंने तो नहीं देखा।

इसके बाद तुम लोग स्टेशनसे चले गए, गाड़ी छूटनेके बाद ही देखा रास्तेके किनारे सियारोंका झुण्ड बैठा है और एक कुत्ता मरा पड़ा है। मेरा अपना कुत्ता अस्पतालमें था—मेरा मन कितना खराब हो गया यह नहीं बतला सकता। अंग्रेजोंमें जिसे अन्धविश्वास कहते हैं वह मुझमें नहीं पर तीन-तीन यात्राओंकी बातने मुझे रास्तेमें क्षणभरके लिए शान्ति नहीं दी।

घर आकर सुना कि भेलू अच्छा है और अस्पतालकी चिट्ठी मिली।

२७ अप्रैल १९२५

बृहस्पतिवारको घर ले आया अगले बृहस्पति सवेरे ६ बजे भेलू मर गया। मेरा पापीके धर्मका संगी अब नहीं रहा। संसारमें इतनी पीड़ाकी बात भी है, इसे मैं ठीक ठीक नहीं समझता था। शायद इसीलिए मुझे इसकी आवश्यकता थी। चारु, और एक बात समझ सका, संसारमें objective कुछ भी नहीं, subjective ही सब-कुछ है। नहीं तो एक कुत्तेके सिवा और कुछ था नहीं! जन्म मरणकी कहानी कभी झूठी नहीं है।

तुम्हारा शरत्

---

२८ माघ, १३४२

प्रियवरेषु। भाई चारु इसी बीच मैं घर गया था। गाँवका मिट्टीका घर और रूपनारायण नद—इनकी मायाके कारण मैं अधिक दिनोंतक कहीं नहीं रह पाता हूँ। लेकिन यह भी सच है कि इनकी मायाको छोड़कर चले आनेमें

अब अधिक देर नहीं है। पुराने इष्ट मित्र बहुतेरे आगे चले गये हैं। उन्हें मैं निरन्तर स्मरण करता हूँ। अभी अभी दिवंगत अध्यापक विपिन गुप्तके श्राद्धमें भोजनका निमंत्रण मिला। शिवपुरमें न जाने कितनी ही बातें इनके साथ बचपनमें बीती हैं। तुम पुराने मित्रोंमेंसे हो, आशा है कमसे कम तुमसे पहले जा सकूँगा। निरन्तर पीछेकी बातें सोचता हूँ, आगेकी ओर एक बार भी निगाह नहीं जाती है। लेकिन जाने दो इन बातोंको, तुम्हारा मन खराब करनेसे लाभ नहीं।

तुम्हारी दोनों ही चिट्ठियाँ मिलीं। जिन्होंने मुझे उपाधि देनेका प्रस्ताव किया था उनकी श्रद्धा और प्यार ही सबसे बड़ी उपाधि है। इस बातको याद करनेसे दिल भर आता है।

ढाका अगर आ सका तो तुम्हारे ही यहाँ आ धमकूँगा, तुमने न्योता भले ही न दिया हो। अपनी गृहिणीको मेरा यथायुक्त नमस्कार देकर कहना कि उनके आह्वानकी अवहेलना नहीं करूँगा।

तुम्हारा—शरत्

२६

['आत्मशक्ति' सम्पादकको लिखित]

५ आश्विन १३३४

श्रीयुक्त आत्मशक्ति-सम्पादक महाशयकी सेवामें। आपकी १ भाद्रपदकी 'आत्मशक्ति' पत्रिकामें सुभाषित लिखित 'साहित्यका मामला' पढ़ा। किसी समय बंगला साहित्यमें सुनीति दुर्नीतिकी आलोचनामें पत्रिकाओंमें कितनी ही कठोर बातें कही जा चुकी हैं और आज अकस्मात् साहित्यमें 'रस'की आलोचनामें कटु रस ही प्रबल हो रहा है। ऐसा ही होता है। देवताके मन्दिरमें सेवकोंकी बराबर सेवायतोंकी तनखा बढ़ते रहनेसे देवीके भोगकी मात्रा बढ़नेके बदले घटती ही रहती है। और मामला तो रहता ही है।

आधुनिक साहित्य-सेवियोंके विरुद्ध सम्प्रति बहुतसी कटूक्तियाँ बरसाई गई

है। बरमानेके पुण्यकार्यमें जो लोग लगे हुए हैं मैं भी उन्हींमें एक हूँ। शनिवारकी चिट्ठी के पृष्ठोंमें उसका प्रमाण है।

मुखोपाध्यायलिखित इस साहित्यका मामला'के अधिकांश मन्तव्योंसे मैं सहमत हूँ केवल एक बातमें किंचित् मतभेद है।

रवीन्द्रनाथकी बात रवीन्द्रनाथ जानें पर अपनी निजी बात जितनी जानता हूँ उससे शरच्चन्द्र 'कल्लोल' 'काली कलम' या बंगलाके किसी भी पत्रको नहीं पढ़ते हैं या पढ़नेको फुरसत नहीं पाते हैं मुसाफिरका यह अनुमान सही नहीं है। लेकिन इस बातको मानता हूँ कि पढ़कर भी सारी बातें नहीं समझता। पर बिना पढ़े ही सारी बातें समझता हूँ इसका दावा नहीं करता।

यह तो हुई मेरी अपनी बात। लेकिन जिस बातको लेकर झगड़ा उठ खड़ा हुआ है वह क्या है और लड़कर किस प्रकारसे उसका निपटारा होगा यह मेरी बुद्धिसे परे है।

रवीन्द्रनाथने साहित्यके धर्मका निरूपण कर दिया और नरेशचन्द्रने इस धर्मकी सीमा निश्चित कर दी। जैसा पाण्डित्य है वैसा ही तर्क भी। पढ़कर मुग्ध हो गया। सोचा बस इसपर और क्या कहा जा सकता है! लेकिन कहां चूक गया। तब कौन जानता था कि जिसकी सीमामें कितने फेर बदलाव है और सीमाकी चोटियोंको लेकर इतने कटुवाक्य तैयार हो जायेंगे। कुमारकी 'विचित्रा'में श्रीयुक्त द्विजेन्द्रनारायण बागची महाशयने 'सीमानेर विचार'पर अपनी राय दी है। तीस पृष्ठ लम्बी ठोस विचारका मामला है। कितनी बातें हैं, कितने भाव हैं। जैसी गम्भीरता है वैसा ही विस्तार वैसा ही पाण्डित्य भी। वेद वेदान्त न्याय गीता विद्यापति, चण्डीदास कालिदासके श्लोक, सुभाषित नीलमणि जैन, मय व्याकरणके अधिकरण कारकतक। बापरे बाप! मनुष्य इतना कब पढ़ता है और न जाने कैसे याद रखता है!

इनके मुकाबलेमें अलंकारभूषित नव-भावनिर्मित क्रीड़ा-नाट्यशास्त्रधारी नरेशचन्द्र बिल्कुल मुर्दा हो गए हैं। हमारे मोहल्लेके नव-नाट्य-समाजके बड़े अभिनेता नरसिंह बाबू थे। राम कहो, रावण कहो हरिश्चन्द्र कहो, सबपर उन्हींका इजारा था। अचानक एक और सज्जन आ धमके, उनका नाम था—राम-नरसिंह बाबू। और भी बड़े अभिनेता! जैसे मुक्त स्वरसे पुकारते थे, हस्त-पद-संचालनमें

अब अधिक देर नहीं है। पुराने हर मित्र बहुतेरे आगे चले गये हैं। उन्हें मैं निरन्तर स्मरण करता हूँ। अभी अभी दिवंगत अध्यापक विपिन गुप्तके श्राद्धमें आनेका निमंत्रण मिला। शिवपुरमें न जाने कितनी ही शामें इनके साथ बहसमें बीती हैं। तुम पुराने मित्रोंमेंसे हो आशा है कमसे कम तुमसे पहले चला जाऊँगा। निरन्तर पीछेकी बातें सोचता हूँ आगेकी ओर एक बार भी निगाह नहीं जाती है। लेकिन जाने दो इन बातोंको, तुम्हारा मन खराब करनेसे लाभ नहीं।

तुम्हारी दोनों ही चिट्ठियाँ मिलीं जिन्होंने मुझे उपाधि देनेका प्रस्ताव किया था उनकी श्रद्धा और प्यार ही सबसे बड़ी उपाधि है। इस बातको याद करनेसे दिल भर आता है।

ढाका अगर आ सका तो तुम्हारे ही यहाँ आ धमकूँगा तुमने न्योता भले ही न दिया हो। अपनी पत्नीको मेरा श्रद्धायुक्त नमस्कार देकर कहना कि उनके आह्वानकी अवहेलना नहीं करूँगा। तुम्हारा—शरत्

२६

['आत्मशक्ति' सम्पादकको लिखित]

५ आश्विन १३३४

श्रीयुत आत्मशक्तिसम्पादक महाशयकी सेवामें। आपकी १ भाद्रपदकी 'आत्मशक्ति' पत्रिकामें *मुसाफिर लिखित 'साहित्यका मामला' पढ़ा। किसी* समय बंगला साहित्यमें सुनीति दुर्नीतिकी आलोचनाके पत्रिकाओंमें कितनी ही कड़ी बातें कही जा गई हैं और आज अकस्मात् साहित्यमें 'रस' की आलोचनामें कटु रस ही प्रबल हो रहा है। ऐसा ही होता है। देवताके मन्दिरमें सबकोंकी जगह सेवायतकी संख्या बढ़ते रहनेसे दवीके भोगकी मात्रा बढ़नेके बदले घटती ही रहती है। और मामला तो रहता ही है।

आधुनिक साहित्य-सेवियोंके विरुद्ध सम्प्रति बहुतेरी कटूक्तियाँ बरसाई गई

है। दरमानेके पुण्यधाममें जो लोग गये हुए हैं मैं भी उन्हींमें एक हूँ। 'शनि-वारकी चिट्ठी'के पृष्ठोंमें उसका प्रमाण है।

सुनीतिरंजित इस साहित्यका मामला पर अधिकांश मन्तव्योंसे मैं सहमत हूँ, केवल एक बातसे किंचित् मतभेद है।

रवीन्द्रनाथकी बात रवीन्द्रनाथ जानें पर अपनी निजी बात जितनी जानता हूँ उससे शरत्चन्द्र 'कल्लोल' 'कालि कलम' या 'कालाई' किसी भी पत्रको नहीं पढ़ते हैं या उनको कुछ नहीं पाते हैं, सुनीतिका यह अनुमान सही नहीं है। लेकिन इस बातको मानता हूँ कि शरत्चन्द्र भी सारी बातें नहीं समझता। पर बिना पढ़े ही सारी बातें समझता हूँ इसका दावा नहीं करता।

यह तो हुई मेरी अपनी बात। लेकिन जिस बातको लेकर झगड़ा उठ खड़ा हुआ है वह क्या है और लड़कर किस प्रकारसे उसका निपटारा होगा यह मेरी बुद्धिसे परे है।

रवीन्द्रनाथने साहित्यके धर्मका निरूपण कर दिया और नरेशचन्द्रने इस धर्मकी सीमा निर्दिष्ट कर दी। जैसा पाण्डित्य है वैसा ही तर्क भी। पढ़कर मुग्ध हो गया। सोचा बस इसपर अब क्या कहा जा सकता है। लेकिन कहाँ बहुत-कुछ गया। तब कौन जानता था कि किसकी सीमामें किसने पैर बढ़ाया है और सीमाकी बातोंको लेकर इतने लठैत तैयार हो जायेंगे। कुआरकी 'विचित्रा'में श्रीयुक्त द्विजेन्द्रनारायण बागची महाशयने सीमानगर विचार पर अपनी राय दी है। चीज एक अच्छी ठस्स विचारका मामला है। कितनी बातें हैं, कितने न्याय हैं। जैसी गम्भीरता है वैसा ही विस्तार वैसा ही पाण्डित्य भी। वेद वेदान्त, न्याय गीता विद्यापति चण्डीदास कालिदासके श्लोक उद्धृत सौन्दर्य जैसे सब व्याकरणके अभिधान कारखाना। बाप रे बाप! मनुष्य इतना कम पढ़ता है और न जाने कैसे याद रखता है!

इसके मुकाबलेमें साम्यपूर्ण पंडित बड़-भाग्यनिर्मित मीठा-गाम्भीर्य यही नरेशचन्द्र बिलकुल मस्त हो गये हैं। हमारे अवैतनिक नव-नाट्य-समाजके एक अभिनेता नरसिंह बाबू थे। राम कहो रावण कहो हरिश्चन्द्र कहो सबमें उन्हींका दबदबा था। अचानक एक और सज्जन आ धमके उनका नाम था—राम-नरसिंह राय। और भी बड़े अभिनेता! जैसे मुक्त स्वरसे पुकारते थे, हस्त-पद-संचालनमें

भी उनका पराक्रम अप्रतिहत था। मानो मतवाला हाथी। इस नवागत यम-न्तसिंह बाबूके तेवरके सामने हमारे बेचारे नरसिंह बाबू छुतीयाकी छाछ-ककड़ीकी भाँति मलिन पड़ गए। नरेश-बाबूको नहीं देखा है पर कल्पनामें उनका चेहरा देखकर ऐसा लग रहा है मानों वह हाथ जोड़कर अनुनयसे कह रहे हैं—प्रभु! मेरे लिए वनमें जाकर रहना इससे कहीं अच्छा है।

द्विजेन्द्रबाबूकी बहनको धोबी जैसी बताते हैं यदि भी वैसी ही छुरे-सी पैनी। इतने सतर्क रहते हैं मानो पैगम्बरके मकबरेमें कहीं एक मच्छरका भी अन्दर न आने पावे। मानो वह हाथमें चाबुक लेकर पोथा-शीतल छान डालनेके लिए बद्ध-परिकर हैं।

हाय रे पैगम्बर! हायरे साहित्यका रस! मथते-मथते मानो तृप्ति नहीं हो रही है। रवीन्द्रनाथ और नरेशचन्द्रको दाहिने बायें रखकर अक्लान्तकर्मी द्विजेन्द्रनाथ निरपेक्ष समान गतिसे मानो वह धुन रहे हैं।

लेकिन क्या किम्!

पर यह किम् ही बड़ी निन्दाकी बात है। नरेशचन्द्र अथवा द्विजेन्द्रनाथ ये लोग साहित्यिक व्यक्ति हैं इनका वाक्-विनिमय और प्रीति-संभाषण समझमें आता है। लेकिन इन बाहर-वालोंका सूत्र पकड़कर जब बाहरवाले आकर उसमें योगदान करते हैं, तब उनके ताण्डव नृत्यको कौन रोक सकता है!

एक उदाहरण दूँ। इसी कुआरके 'प्रवासी'में श्रीअमूल्य दास नामक एक व्यक्तिने रस और रुचिकी आलोचना की है। इनके आक्रमणका लक्ष्य तरुणोंका दल है। और अपना परिचय देते हुए कहते हैं— 'इस समय जिस प्रकार राजनीतिके पथमें शिशु और तरुण छात्र और बेकार व्यक्ति निरन्तर तल्लीन हैं उसी प्रकार अर्थोपार्जनके लिए इन बेकार साहित्यिकोंका दल अपरचनामें लगा हुआ है। और उनका परिणामका यह पुकार है कि 'दौड़ी पकड़कर कलम पकड़नेसे जो कुछ होना चाहिए वही हुआ है'।"

इस व्यक्तिने द्विपुरीगीरी करके ऐसा व्यक्त किया है और आजन्म गुलामीका पुरस्कार काफी फैशन भी इसे नसीब हुई है। इसीलिए साहित्य-रथियोंके निर विषय साहित्यका उत्पात करनेमें इसे संकोच नहीं हुआ। यह आदमी जानता भी नहीं है कि साहित्य असभ्य नहीं है और सभी देशों और सभी युगोंमें इन्होंने

बलदान करके प्राप्त किया है। इसीलिए साहित्यको आज इतना बड़ा गौरव मिला है।

अमूल्य बाबू भले ही न मानें पर 'प्रवासी'के प्रदीप और तरुण सम्पादकसे तो यह बात छिपी नहीं हुई है कि साहित्यके मजदूरोंकी आलोचना और दरिद्र साहित्यिकके पूरा न कर सकनेकी आलोचना एक ही वस्तु नहीं है। मेरा विश्वास है कि उनके समझने ही इतनी बड़ी त्रुटि उनकी पत्रिकामें छप गई है। और इसके लिए वह पीड़ाका ही अनुभव करेंगे और शायद अपने लेखकको बुलाकर कानमें कह देंगे, भैया मनुष्यकी गरीबीकी खिल्ली उड़ानेमें जो रुचि प्रकट होती है वह भद्र समाजकी नहीं है और केवल पूँजीके घेरेमें सिद्धहस्त होनेसे साहित्यके 'रस'का विचार करनेका अधिकार नहीं प्राप्त होता है। इन बातोंमें अन्तर है पर वह तुम्हारी समझसे परे है।

२७

[श्री मणीन्द्रनाथ रायको लिखित]

सामताबेड़, पानित्रास, जिला हवड़ा
१ जून १९२७

परमकल्याणीयेषु। मणीन्द्र, तुम्हारी चिट्ठी यथासमय मिल गई थी, लेकिन कुछ तो मन-खराबी और कुछ शारीरिक हालतके कारण जवाब देनेमें देर हो गई।

तुम हमारे यहाँ आओगे इस बातको सुनकर मुझे खुशी होगी यह तुम्हें मालूम है। मगर तुम्हें कष्ट होगा। पहली बात है बड़ी गरमी है, और मैदानोंके बीचसे ठीक दोपहरको आना बड़ी भयंकर बात है। कुछ पानी-वानी साथ लाना हो और किसी दिन आना। इसके अलावा इस ६ तारीखतक मैं शिवपुरमें रहूँगा। कुछ काम भी है और एक-दो दिन शिशिर भादुड़ीके थियेटरमें षोड़शीका रिहर्सल देखूँगा।

(उसके बाद 'भारती'में प्रकाशित हुए श्री शिवराम चक्रवर्तीके नाटकमें

सच है। लेकिन मुझे वह पसन्द नहीं। नौकरी-चाकरी छोड़कर यह अस्वस्थ शरीर लेकर खानाबदोश बनना बिल्कुल पसन्द नहीं। और, किसीके पास जाकर रहना—यह तो एकदम असंभव है। मैं बल्कि अस्पतालमें मरूँगा पर किसी भी हालतमें इस पीड़ित शरीरको किसीके घरमें अन्तिम बार नहीं रखूँगा। इससे मैं घृणा करता हूँ। मेरे बहुतेरे सम्बन्धी और मित्र हैं, इसे जानता हूँ। जानेपर कुछ दिनोंतक देख-भाल नहीं होगी ऐसा नहीं समझता। लेकिन मैं खामख्वाह कष्ट नहीं देना चाहता। अगर गया तो अपनी बड़ी बहनके यहाँ ही रहूँगा एक प्रकारसे वही मेरा सहारा है। उसकी हालत भी बहुत अच्छी है—जानेके लिए बार-बार तगादा भी कर रही है। लेकिन अस्वस्थ शरीर लेकर मैं कहीं जाना नहीं चाहता। मुझे बारम्बार इसी बातका डर लगता है कि कहीं अचानक मरकर उन्हें परेशान न करूँ। पर अब शायद आशंकाके लिए कारण नहीं। वर्षा ऋतुका समय मेरे लिए बड़ा ही कठिन होता है। वह तो समाप्त हुई। अब आशा है धीरे धीरे चंगा हो जाऊँगा। अपने दुःसमयमें अगर 'चरित्रहीन' समाप्त नहीं कर सकूँ तो दूसरा कौन कर सकता है, इसे पिछली बार पूछा था। इसका उत्तर देकर निश्चिन्त करना।

एक बात और जाननेकी इच्छा है। 'नारीका मूल्य' समाप्त हो गया। इसकी इतनी प्रशंसा होगी इसे आशा भी नहीं था लेकिन अब परिचित-अपरिचित आदमियोंसे इसकी कितनी ही आलोचनाएँ और पत्र पाकर जान रहा हूँ कि इसने लोगोंकी रुचि आकर्षित की है। मैं पूरी तरह स्वस्थ होता तो जैसा पहले संकल्प किया था शायद वैसा ही होता।

पर एक बात यह भी है कि जो भी प्रतिवाद क्यों न करें नितान्त महिलाकी रचना होनेके कारण अवहेलना न करें। अच्छी बात है यह मेरी छिपी हुई है। यह बात मणिलालको कैसे मालूम हुई? मानती, प्रमाणो, वाहिरेर इन्होंने ही कैसे जाना! कहीं तुमने तो प्रचार नहीं कर दिया? हाँ जो मेरी रचनाओंसे घनिष्ठ रूपसे परिचित हैं वे समझ जायेंगे। लेकिन यह बात साधारण लोगोंके समझमें आनेकी नहीं।

(युगान्तर, माघ १३५४)

३०

[१]

५४ ३६ वीं स्ट्रीट, रंगून
१ २ १९

सविनय निवेदन। परिचयका सौभाग्य न होनेसे भी महाशयका आशीर्वाद और प्रशंसा पाकर अपनेको बारम्बार धन्य समझ रहा हूँ। आपने अपनेको वृद्ध लिखा है मैं भी तो एक प्रकारसे वही हूँ। मेरी उम्र (३९) उनतालीस है, फिर भी अगर उम्रमें कुछ छोटा होऊँ तो मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

पत्रमें आपने जन्म और यात्रा का परिचय दिया उसीसे समझमें आ जाता है कि बंगालके भिन्न-भिन्न समयोंके केन्द्रोंको अपनी आँखोंसे देख आनेके कारण ही जन्मभूमिके प्रति आपकी ममताका कम होना तो दूर रहा बल्कि वह बढ़ गई है। या यह बात भी शायद ठीक नहीं है। क्योंकि ज्ञान और अनुभवके आधार पर ही जन्मभूमि ग्राम-जननीके प्रति स्नेह उत्पन्न होता है ऐसा भी नहीं। मैं कलकत्ता-प्रवासी बहुतेरे बड़े आदमियोंके जन्मस्थान अपनी आँखोंसे देख आया हूँ। लेकिन उनकी दुर्दशाकी कोई सीमा नहीं। उनमें जितना सामर्थ्य है उसका शतांश भी अगर वे उस दिशामें ध्यान देते, तो शायद दुःखी गाँवोंके सौभाग्यका पारावार नहीं रहता।

मेरे पास समय और सामर्थ्य दोनों इतने कम हैं कि उन्हें सोलहों आने गिनतीमें न लेनेसे भी किसीका दोष नहीं दिया जा सकता। फिर भी मैं केवल यही चेष्टा करता हूँ कि कहीं एक भी आदमीकी दृष्टि अपने गाँवकी ओर आकर्षित हो जाय। इसीलिए अत्यन्त अप्रिय और क्लेशदायक होनेपर भी गाँवके सम्बन्धमें अच्छी बातें लिखनेकी चेष्टा करता हूँ। शहरके लोग कल्पनाके आधार पर गाँवोंकी जो प्रशंसा करते हैं अधिकांशमें वह यथार्थ नहीं होती बल्कि गाँव धीरे धीरे अवनतिकी ही ओर जा रहे हैं। इस बातको 'ग्रामीण समाज' नामक पुस्तकमें बतानेकी चेष्टा की थी। लेकिन चेष्टा करने और सफलतामें जो अन्तर होता है मेरी रचनामें भी उतना हुआ है।

आपने इसे नाटकके आकारमें प्रकाशित करनेका उपदेश दिया है। शायद करनेसे अच्छा ही होगा। लेकिन मुझमें तो वह क्षमता नहीं है। कमसे कम है या नहीं, इसकी कभी परीक्षा नहीं की। अगर दूसरा कोई कष्ट करके करता है जिसमें क्षमता है तो शायद अच्छा भी हो सकता है। लेकिन मेरा करना शायद व्यर्थ परिश्रममात्र होगा। और कोई नाट्यमंच अपने समय और सामर्थ्यका अपव्यय करके उसे मंचस्थ भी नहीं करना चाहेगा। पर आपके उपदेशको ध्यानमें रखकर भविष्यमें अगर कुछ कर सका तो चेष्टा करूँगा। पहले गौरवके सम्बन्धमें मेरी 'पंडित महाशय' पुस्तकको भी किसी-किसीने 'नाटक' करनेकी बात उठाई थी पर हो नहीं सका। वह शायद और भी अच्छा बन सकता था।

जो कुछ भी हो इस उपदेशको मैं भूलूँगा नहीं और इसके लिए आपको प्रणाम करता हूँ।

—श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

समाप्त